सर्वोदय पुस्तकमाला, पुष्प - १८

भूधर भजन सौरभ

अनुवादक
श्री ताराचन्द्र जैन
जयपुर

प्रकाशक
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
राजस्थान

प्रस्तावना

करुणा से भरपूर वीतरागी तीर्थंकरों ने अहिंसा और समता के ऐसे उदात्त जीवन-मूल्यों का सृजन किया जिसके आधार से व्यक्ति जैविक आवश्यकताओं से परे देखने में समर्थ हुआ और समाज विभिन्न क्रिया-कलापों में आपसी सहयोग के महत्व को हृदयंगम कर सका। तीर्थंकरों की करुणामयी वाणी ने व्यक्तियों के हृदयों को छूआ और समाज में एक युगान्तकारी परिवर्तन के दर्शन हुए। नवजागरण की दुन्दुभि बजी। शाकाहार क्रान्ति, आध्यात्मिक मानववाद की प्रतिष्ठा, प्राणी-अहिंसा की लोक-चेतना, लैंगिक समानता, धार्मिक स्वतंत्रता, जीवन-मूल्य-संप्रेषण के लिए लोक-भाषा का प्रयोग - ये सब समाज में तीर्थंकरों/महात्माओं के महनीय व्यक्तित्व से ही हो सका है। यहाँ यह लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा कि जीवन में भक्ति का प्रारंभ इन शुद्धोपयोगी, लोककल्याणकारी तीर्थंकरों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन से होता है और उसकी (भक्ति की) पराकाष्ठा वीतरागता-प्राप्ति में होती है। दूसरे शब्दों में, तीर्थंकरों की शैली में जीवन जीना उनके प्रति कृतज्ञता की पराकाष्ठा है। भक्ति उसका प्रारंभिक रूप है।

प्रस्तुत पुस्तक 'भूधर भजन सौरभ' में भक्त कवि भूधरदासजी के लोक-भाषा में रचित ८५ भजनों, स्तुतियों, विनतियों का संकलन किया गया है। इसका उद्देश्य मनुष्यों/पाठकों में जिन भक्ति/प्रभु भक्ति को सघन बनाना है जिससे वे अपने नैतिक-आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ प्राणिमात्र के कल्याण में संलग्न हो सकें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन्द्रियों की दासता मनुष्य/व्यक्ति के नैतिक-आध्यात्मिक विकास को अवरुद्ध करती है, जिसके कारण व्यक्ति पाशविक वृत्तियों में ही सिमटकर जीवन जीता है। जीवन की उदात्त दिशाओं के प्रति वह अन्धा बना रहता है। मनुष्य/व्यक्ति के जीवन में भक्ति का उदय उसको जितेन्द्रिय आराध्य के सम्मुख कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए खड़ा कर देता है, जिसके फलस्वरूप वह इन्द्रियों से परे समतायुक्त जीवन के दर्शन करने में समर्थ होता है। जब वह आराध्य की तुलना अपने से करता है, तो उसको अपने आराध्य की महानता और अपनी तुच्छता का भान होने लगता है। वह आराध्य के प्रति

आकर्षित होता जाता है और उसके प्रति श्रद्धा और प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है। इस श्रद्धा और प्रेम के वशीभूत होकर वह अपने आराध्य को मन में संजोए रखकर विकास की प्रेरणा प्राप्त करता रहता है। जितेन्द्रिय/वीतराग आराध्य उसको वीतराग/अनासक्त बनने की दिशा में प्रेरित करता है। वीतराग आराध्य भक्त का सहारा बनकर उसे आत्मानुभूति/आत्मानन्द में उतर जाने की ओर इंगित करता है। यही भक्ति की पूर्णता है। इस तरह से वीतराग की भक्ति वीतरागी बना देती है। भक्ति की परिपूर्णता में वीतरागी के प्रति राग तिरोहित हो जाता है। यहाँ यह समझना चाहिए कि भक्ति की प्रारम्भिक अवस्था में भी वीतरागी आराध्य के प्रति राग वस्तुओं और मनुष्यों के राग से भिन्न प्रकार का होता है। उसे हम उदात्त राग कह सकते हैं। इस उदात्त राग से संसार के प्रति आसक्ति घटती है और व्यक्ति मानसिक तनाव से मुक्त होता जाता है। इस उदात्त राग से वर्तमान जीवन की एवं जन्म-जन्म की कुप्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और लोकोपयोगी सद्प्रवृत्तियों का जन्म होता है। इस तरह से इससे एक ऐसे पुण्य की प्राप्ति होती है जिसके द्वारा संचित पाप को नष्ट किए जाने के साथ-साथ समाज में विकासोन्मुख परिस्थितियों का निर्माण होता है। भक्ति की सरसता से व्यक्ति ज्ञानात्मक-कलात्मक स्थायी सांस्कृतिक विकास की ओर झुकता है। वह तीर्थंकरों द्वारा निर्मित शाश्वत जीवन-मूल्यों का रक्षक बनने में गौरव अनुभव करता है। इस तरह भक्ति व्यक्ति एवं समाज के नैतिक-आध्यात्मिक विकास को दिशा प्रदान करती है। भक्त-कवि भूधरदासजी के ८५ भजनों का संकलन 'भूधर भजन सौरभ' के अन्तर्गत किया गया है। अब हम इस चयन की विषय-वस्तु की चर्चा करेंगे।

गुरु की शिक्षा – जीवन में नैतिक-आध्यात्मिक विकास गुरु के मार्गदर्शन के बिना प्रायः असंभव ही होता है। गुरु ने ही हमें यह शिक्षा दी है कि यह मनुष्य देह दुर्लभ है (१८, २२); यह अवसर, यह मनुष्य पर्याय बार-बार नहीं मिलती (३७, ५८); तू इस अवसर को क्यों खोता है (६१)? क्या तू इस नरभव को पाना आसान समझता है (६८)? यह नरभव आसान नहीं है, इसे सोच-समझकर व्यतीत करो (33)। इस अवसर को विषयों में मत गंवाओ (५८, ६३, ६५)। जगत में जीवन थोड़ा है (१८)। हे हँस! हमारी शिक्षा मान ले (६४); व्यर्थ गर्व मत कर (६२), तेरी ये बुरी आदतें छोड़ (६३), अपनी प्रमाद-निद्रा

छोड़ (४७)। तू भगवान का भजन करना क्यों भूल गया (१०)? तूने अपनी आत्मा/ब्रह्म को नहीं पहचाना (७६), तू गुरु की सयानी सीख सुन, अपने पाँच इन्द्रियरूपी शत्रुओं को वश में कर (८०)। तुझे बार-बार कौन समझाये (६४)? हमने समझा दिया, अब तुझे जो उचित लगे सो कर (६७); तू जैसा करेगा वैसा ही फल भोगेगा क्योंकि तू ही कर्त्ता है और तू ही भोक्ता (६४)।

संसार की असारता एवं वृद्धावस्था - क्या तुझे पता नहीं कि यह काया, यह माया सब अस्थिर हैं (६२), यह तन एक वृक्ष के समान है (७५), यह काया रूपी गागर जर्जर होती जाती है (७३)। हे अभिमानी! बुढ़ापा आ रहा है, शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय अपना रूप-बल छोड़ती हुई जर्जर-शिथिल होती जाती है, वे अब मन का साथ नहीं दे पातीं (७१), यह शरीररूपी चरखा पुराना होता जाता है (७२), ये तन-धन सब पानी माहिं पतासे की भाँति अस्थिर हैं (७९)।

विपरीत क्रिया - गुरु समझाते हैं कि ऐसे में तू गाफिल होकर क्यों डोलता है? तेरे दिन व्यर्थ ही बीत रहे हैं (७४)। तू धर्म/शान्ति चाहता है तो उसी के अनुरूप क्रिया कर। तू धर्म/शान्ति प्रकट करना चाहता है और क्रिया करता है हिंसामयी, पापमयी (६०)। बिना विवेक के, बिना ज्ञान के तेरा मनोरथ कैसे सफल होगा?

नामस्मरण - स्तुति - हे जीव! तू ऋषभ जिनेन्द्र का नाम जप (३, ४)। जिनराज का नाम मत भूल/बिसार (३३), तू जिनवर के नाम की माला जप (२३)। उनके नामस्मरण से कष्ट/पाप वैसे ही दूर हो जाते हैं जैसे सूर्य के उदय होने से अंधकार दूर हो जाता है (२५)।

उनके नाम का स्मरण करनेवाला भक्त कहता है - थांकी कथनी म्हाने प्यारी लागे जी (२८), अजित जिन मेरी बिनती मानो (८), हे शांति जिनेन्द्र, मुझे भी तारिये (९)। इस प्रकार जिनेन्द्र के नाम स्मरण के लिए बार-बार प्रेरित किया गया है।

जीवन का आदर्श - सदाचार का ग्रहण - गुरु समझाते हैं - हे भाई! अपना अन्तर/हृदय उज्ज्वल करो, कपटरूपी तलवार को तजो, तभी तुम्हारा कार्य सफल होगा (५४)। जीवन में सन्तोष धारण करो, हृदय में समता विचारो (७८)। पाँचों इन्द्रियों में यह चंचल मन ही मुखिया/प्रमुख है अत: पहले उसे

ही पकड़ो/कसो/नियंत्रित करो (८०)। इन्द्रिय-विषयों को छोड़ो (११), सात-व्यसनों और आठ मदों का त्याग करो, चित्त में करुणाभाव रखो (६८)। यह दुर्लभ मनुष्य-भव मिला और सत्संगति का संयोग बना है (३७) तो जप-तप-तीरथ-जिनपूजा करो, लालच छोड़ो (२९)। मन में मित्र और शत्रु के प्रति समान भाव रखो (४५), निन्दा और प्रशंसा के प्रति समभाव रखो (५०)। पर-स्त्री माता के समान सम्माननीय और पर-धन पाषाण के समान त्याज्य समझो, मन-वचन और काय से पर का कार्य करो, दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझो, जगत के छोटे-बड़े सभी जीवों को अपने समान समझो, किसी को न सताओ (६९)। अपने मुख से परनिन्दा मत करो, सबसे मैत्री-भाव रखो, जीवों के प्रति दया पालो, झूठ तजो, चोरी से बचो (७८) और मन से कामनाओं का मैल उतारो (३७)। श्रद्धारूपी गागर में तत्वज्ञानरूपी रुचि की केसर घोलो (८१)। जब बाहर का भेष और अन्तर की क्रिया - दोनों पवित्र होंगे तभी पार हो सकोगे (५४)। जो जीव इस प्रकार सदाचार धारण करेंगे वे ही जीवन-मुक्त होंगे (७८)।

आध्यात्मिक प्रेरणा - इसलिए तू सब थोथी बातों को छोड़ और भगवान का भजन कर (५६), हे प्राणी! सीख सुन, तू मंत्रराज णमोकार को मन में धार ले (४२), अपना अन्तर उज्ज्वल कर (५४), सुमति हंसिनी से प्रीत जोड़ (६५), भूधरदासजी कहते हैं कि ऐसे परिणाम ही सार हैं बाकी सब खेल हैं, व्यर्थ हैं (४)।

गुरु का महत्त्व - जब शिष्य को। भक्त को यह भान होने लगता है - गुरु मार्गदर्शक हैं, वे भले-बुरे का, हेय-उपादेय का ज्ञान करानेवाले हैं तो उसे गुरु के प्रति सहज ही बहुमान होने लगता है, वह गुरु के महत्त्व को समझने लगता है। वह उनकी स्तुति करता है, उनका गुणानुवाद करता है और विचारता है - मुझे भी ऐसे उपकारी मुनिवर कब मिलेंगे (४५)? जो भ्रमरूपी तीव्र रोग को दूर करने में समर्थ वैद्य हैं (५०), जो इस भव-सागर से स्वयं पार होते हैं और दूसरों को पार कराने में सहायक बनते हैं, साधन बनते हैं (५१), वे गुरु जिनका सान्निध्य ही संशयों को नष्ट कर देता है; जिनके सान्निध्य से ही समस्याओं/शंकाओं का समाधान हो जाता है, जो प्राणियों को सम्बोधते हैं, शिक्षा देते हैं (४४)।

जितेन्द्रिय आराध्य की भक्ति - गुरु की सीख से जिनेन्द्र के प्रति भक्ति-भाव जागृत होता है। जिनेन्द्र की भक्ति में जिनेन्द्र के गुणों का स्तवन किया जाता है। जिनेन्द्र का गुणानुवाद आत्मा के शुद्ध स्वरूप का गुणानुवाद है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट करना ही तो 'परमात्मत्व' को पाना है, भक्ति का लक्ष्य यही है अत: वह अपने शुद्धत्व को प्रकट करने के लिए उनका आश्रय लेता है, उनका ध्यान करता है जिन्होंने 'शुद्धत्व' प्रकट कर लिया है। वह उनके गुणों को पहचानने-समझने का प्रयास करता है। वे मुक्ति का मार्ग बतानेवाले हैं (५), अज्ञान का नाश करनेवाले हैं (२६) अर्थात् उन्होंने स्वयं अपने अज्ञान का नाशकर, मुक्ति प्राप्त कर हमें उसका मार्ग बताया है। उनका नाम लेने से पापों का/अवांछित स्थितियों का परिहार हो जाता है (२५)। इसलिए भक्त कहता है - स्वामी! आपकी शरण ही सच्ची है। सार्थक है (३९)। आप [illegible] करुणा से सराबोर हैं (७), आप मुझ पर भी करुणा कीजिए (४१)। मैं कोई हाथी-घोड़े-धन-सम्पत्ति नहीं चाहता (८, ९), मैं तो बस यह चाहता हूँ कि जब तक मोक्ष न पाऊँ तब तक भव-भव में मुझे आपकी शरण मिले (४३), आपकी भक्ति का सुअवसर मिले (१, ८, ९, २४) जिससे मेरी बंध- दशा मिट जाय। आपका सुयश सुनकर ही मैं आपकी शरण में आया हूँ (४२), आपकी शान्त-वीतराग छवि देखकर मेरा पुराना चला आ रहा मिथ्यात्व/अज्ञानरूपी ज्वर टूट गया। मेरे नयनों को आपकी वीतरागी मुद्रा के दर्शन की आदत बन गई है (३५)।

मैं अब तक अज्ञान-दशा में था और ज्ञान बिना भव-वन में भटक रहा था (५९), मैंने अब तक आपकी महिमा नहीं जानी थी (२५, ६), अब आपकी महिमा जानी (३६) तो आज मेरी आत्मा पावन/पवित्र हो गई (३४)।

धर्म की कसौटी - अब मैं समझ गया हूँ कि जो अठारह दोष-रहित हैं वे मेरे देव हैं, जो लोभ-रहित हैं वे मेरे गुरु हैं और जो हिंसारहित है - जीवदया से युक्त है वह मेरा धर्म है (४०, ६६, ६९)। ये चारों - अरहन्त-सिद्ध (देव), साधु (गुरु) और अहिंसा धर्म ही मेरे लिए शरण हैं (४०) अन्य कोई नहीं। इनकी शरण ही सहाई है (३९)। इनकी महिमा का वर्णन न शेष-सुरेश-नरेश कर सके (३८) न मेरी जीभ ही उनका वर्णन करने में समर्थ है (२, ४)। किन्तु फिर भी मैं अपनी जिह्वा को समझाता हूँ कि हे मेरी रसना! तू ऋषभ जिनेन्द्र का निरन्तर स्मरण कर (३, ४), श्री नेमिनाथ का नाम नित्य भज (११), यदि भजन

सुधारस से अपनी रसना नहीं धोई तो वह रसना किस काम की (२३)? हे मन! जिनराज के चरणों को मत भूल (३२, ३३)।

उत्सव-भ्रमण-यात्रा आदि मानव को प्रिय लगते हैं अतः कवि इनके माध्यम से प्राणी को धर्म से, आत्मा से जोड़ना चाहता है, वह कहता है - अरे मन! चल हथनापुर की जात (२९)। ऋषी रामद्वारा में जाने की इच्छा प्रकट करता हुआ कहता है - वा पुर के वारणै जाऊँ (२७)। अपनी उत्सवप्रियता के कारण मानव उत्सव-योग्य अवसर ढूँढ़ ही निकालता है। भावी तीर्थंकर का जन्म जगत के कल्याण के लिए बहुत बड़ा निमित्त है इसलिए इस घटना को बहुत बड़े उत्सव के रूप में मनाया जाना स्वाभाविक है (२)।

श्री नेमिनाथजी की असीम करुणा से प्रभावित भक्त अपने कल्याण के लिए उनकी शरण लेता है (११)। कवि ने उनकी (नेमिनाथजी की) वाग्दत्ता राजुल के मन की व्यथा प्रकट करते हुए श्री नेमिनाथ के अनुसरण से शांति पाने का वर्णन किया है।

भजनों के हिन्दी अनुवाद के लिए प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्य श्री ताराचन्द्र जैन एडवोकेट का आभारी हूँ।

आशा की जाती है कि प्रस्तुत 'भूधर भजन सौरभ' का जन-जन में प्रचार होगा। पुस्तक का विक्रय मूल्य कम करने के लिए जिन महानुभावों ने आर्थिक सहयोग दिया उनके प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

पुस्तक के प्रकाशन में सहयोगी कार्यकर्त्ता एवं जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि., जयपुर धन्यवादार्ह हैं।

पुष्पदन्त-शीतलनाथ निर्वाण दिवस
अश्विन शुक्ला अष्टमी
वीर निर्वाण संवत् २५२५
१७-१०-१९९९

डॉ. कमलचन्द सोगाणी
संयोजक
जैनविद्या संस्थान समिति,
जयपुर

विषय-सूची

भजन संख्या		पृ. संख्या
	महाकवि भूधरदास : एक परिचय	
१.	लगी लौ नाभिनन्दनसों	१
२.	आज गिरिराज के शिखर	२
३.	रटि रसना मेरी ऋषभ जिनन्द	४
४.	मेरी जीभ आठों जाम	५
५.	आरती आदि जिनन्द तुम्हारी	६
६.	आदि पुरुष मेरी आस भरो जी	७
७.	अजित जिनेश्वर अघहरणं	८
८.	अजित जिन विनती हमारी मान जी	९
९.	एजी मोहि तारिये शान्ति जिनन्द	१०
१०.	भगवन्त भजन क्यों भूला रे	११
११.	अब नित नेमि नाम भजौ	१२
१२.	मा विलंब न लाव, पठाव तहाँ री	१३
१३.	नेमि बिना न रहै मेरो जियरा	१४
१४.	देख्यो री! कहीं नेमिकुमार	१५
१५.	तहाँ लै चल री! जहाँ जादौपति प्यारो	१६
१६.	अहो वनवासी पिया	१७
१७.	देखो गरब गहेली री हेली	१९
१८.	जग में जीवन थोरा	२०
१९.	मेरे मन सूवा, जिनपद पींजरे वसि	२१
२०.	त्रिभुवन गुरु स्वामी जी	२२
२१.	पारस-पद-नख प्रकाश	२५
२२.	अरे! हाँ चेतो रे भाई!	२६
२३.	जपि माला जिनवर नामकी	२७
२४.	पारस प्रभु को नाऊँ	२८
२५.	तुम तरन तारन भव निवारन	३१
२६.	सीमंधर स्वामी मैं चरनन का चेरा	३४
२७.	वा पुर के वारणै जाऊँ	३५
२८.	थांकी कथनी म्हांनै प्यारी लगै जीं	३७
२९.	अरे मन चल रे श्रीहथनापुर की जात	३८

३०.	मेरे चारों शरन सहाई	३९
३१.	भवि देखि छबि भगवान की	४०
३२.	जिनराज चरन मन मति बिसरै	४१
३३.	जिनराज ना विसारो	४२
३४.	पुलकन्त नयन चकोर पक्षी	४३
३५.	नैननि को बान परी दरसन की	४५
३६.	म्हें तो थांकी आज महिमा जानी	४६
३७.	प्रभु गुन गाय रे, यह औसर फेर न पाय रे	४७
३८.	शेष सुरेश नरेश रहैं तोहि	४८
३९.	स्वामीजी सांची सरन तुम्हारी	४९
४०.	देखे देखे जगत के देव	५०
४१.	करुणा ल्यो जिनराज हमारी	५१
४२.	अहो जगतगुरु एक	५३
४३.	जै जगपूज परमगुरु नामी	५५
४४.	सुन ज्ञानी प्राणी	५७
४५.	वे मुनिवर कब मिलि हैं उपगारी	५८
४६.	सो गुरुदेव हमारा है जाको	५९
४७.	अब पूरी कर नींदड़ी	६०
४८.	श्री गुरु शिक्षा देत हैं	६२
४९.	भलो चेत्यो वीर नर तू	६७
५०.	बन्दौं दिगम्बर गुरु चरन	६८
५१.	ते गुरु मेरे मन बसो	७१
५२.	देखो भाई, आतमदेव बिराजै	७४
५३.	तुम सुनियो साधो!	७५
५४.	अन्तर उज्जल करना रे भाई	७७
५५.	अब मेरे समकित सावन आयो	७८
५६.	और सब थोथी बातें	७९
५७.	सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया	८०
५८.	अज्ञानी पाप धतूरा न बोय	८१
५९.	पानी में मीन पियासी	८२
६०.	ऐसी समझ के सिर धूल	८३
६१.	चित, चेतन की यह बिरिया रे	८४
६२.	गरब नहिं कीजे रे	८५

६३. वीरा थारी आन बुरी परी रे ८६
६४. अब मन मेरे वे ८७
६५. मन हंस! हमारी लै शिक्षा हितकारी ९०
६६. सो मत सांचो है मन मेरे ९१
६७. मन मूरख पंथी, उस मारग मत जाय रे ९२
६८. ऐसो श्रावक कुल तुम पाय ९३
६९. जीवदया व्रत तरु बड़ो ९५
७०. सब विधि करन उतावला ९७
७१. आयो रे बुढ़ापो मानी ९८
७२. चरखा चलता नाहिं रे ९९
७३. काया गागरि जोजरी १०१
७४. गाफिल हुआ कहाँ तू डोले १०२
७५. यह तन जंगम रूंखड़ा १०३
७६. रखता नहीं तन की खबर १०५
७७. जगत जन जूवा हारि चले १०७
७८. जग में श्रद्धानी जीव जीवन मुकत हैंगे १०८
७९. वे कोई अजब तमासा देख्या १०९
८०. सुनि सुजान! पाँचों रिपु वश करि ११०
८१. अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी १११
८२. सुनि सुनि हे साधनि ११२
८३. होरी खेलौंगी, घर आये चिदानन्द कन्त ११४
८४. हूँ तो कहा करूं कित जाउं ११५
८५. राजा राणा छत्रपति ११७
परिशिष्ट १२०

कविवर भूधरदास

(वि. सं. १७५०-१८०६; १६९३-१७४९ ई.)

हिन्दी भाषा के जैन कवियों में महाकवि भूधरदासजी का नाम उल्लेखनीय है। कविवर आगरा-निवासी थे। ये खण्डेलवाल जाति के थे। भूधरदासजी कवि एवं पंडित होने के साथ-साथ एक अच्छे प्रवचनकार भी थे। आप आगरा के स्याहगंज (शाहगंज) के जैन मन्दिर में प्रतिदिन शास्त्र-प्रवचन करते थे।

भूधरदासजी ने पार्श्वपुराण, जिनशतक एवं भूधर पद-संग्रह की रचना कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया है।

पार्श्वपुराण - पार्श्वपुराण में तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पूर्व के नौ भवों का वर्णन किया गया है। नौ भव पूर्व पार्श्वनाथ पोदनपुर के राजा अरविन्द के मंत्री विश्वभूति के पुत्र 'मरुभूति' थे, कमठ इनका भाई था। कमठ के दुराचारों-अनाचारों-अत्याचारों से क्षुब्ध हो मरुभूति ने उसका वध कर दिया। यह वैर अगले आठ भवों तक चला जिसका कवि ने हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। नौवें भव में मरुभूति 'राजकुमार पार्श्व' बनते हैं जो कि भावी तीर्थंकर हैं। कमठ का जीव फिर अपना वैर निकालता है और तपस्यारत पार्श्वनाथ पर घोर उपसर्ग करता है किन्तु पार्श्वनाथ अपनी तपस्या/साधना से विचलित नहीं होते और केवलज्ञान प्रकट कर सम्मेदशिखर से मोक्ष-गमन करते हैं।

यह प्रसाद गुण-युक्त रचना है। इसका समापन कवि ने आगरा में सं. १७८९ (सन् १७३२) में किया।

जैनशतक - इस रचना में १०७ कवित्त, दोहे, सवैये और छप्पय हैं। वैराग्य-भाव के विकास के लिए इस रचना का प्रणयन किया गया है। वृद्धावस्था, संसार की असारता, काल सामर्थ्य, स्वार्थपरता, दिगम्बर मुनियों की तपस्या आदि विषयों का निरूपण बहुत रुचिकर ढंग से किया गया है। नीरस और गूढ़ विषयों का निरूपण भी सरस एवं प्रभावोत्पादक शैली में किया गया है।

अनात्मिक दृष्टिवाले लोगों के लिए कवि कहते हैं - संसार के भोगों में लिप्त प्राणी रात-दिन विचार करता रहता है कि जिस प्रकार भी संभव हो धन एकत्र

कर विषयों का आनन्द भोगूँ। वह नाना प्रकार के सपने संजोता है, कल्पनाएँ करता है और विचारता है कि धन प्राप्त कर संसार के सब सुख पा लूँगा और इस लालसा की पूर्ति के लिए यह उचित-अनुचित का विचार भी त्याग देता है, बस येन-केन-प्रकारेण धन बटोरना ही उसके जीवन का ध्येय रह जाता है। यथा –

चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज करे जिय राजी,
गेह चिनाय करूँ गहना कछु, ब्याहि सुतासुत बांटिय भाजी,
चिन्तत यों दिन जाहिं चले, जम आनि अचानक देत दगाजी,
खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रूपी शतरंज की बाजी।

कवि ने इस शतक में अनात्मिक दृष्टि को दूर कर आत्मिक दृष्टि स्थापित करने का प्रयास किया है।

पद-साहित्य - कवि ने स्तुतिपरक, अध्यात्म-उपदेशी, संसार-शरीर से विरक्ति उत्पादक, जिनेन्द्र के नाम-स्मरण के महत्त्व के प्रतिपादक, जीव की अज्ञानावस्था के सूचक आदि विषयों से सम्बन्धित पदों की रचना की है।

कवि भूधरदासजी के पद जीवन में आस्था और विश्वास की भावना जागृत करते हुए अध्यात्म-रस से सराबोर करते हैं।

(१)

राग सोरठ

लगी लो नाभिनंदनसों।
जपत जेम चकोर चकई, चन्द भरता को॥

जाउ तन-धन जाउ जोबन, प्रान जाउ न क्यों।
एक प्रभुकी भक्ति मेरे, रहो ज्यों की त्यों॥ १॥

और देव अनेक सेवे, कछु न पायो हौं।
ज्ञान खोयो गांठिको, धन करत कुवनिज ज्यों॥ २॥

पुत्र-मित्र कलत्र ये सब, सगे अपनी गों।
नरक कूप उद्धरन श्रीजिन, समझ 'भूधर' यों॥ ३॥

हे नाभिनन्दन! जिस प्रकार वियोगी चकवा-चकवी सूर्य के आगमन के प्रति आशान्वित होकर मिलन की घड़ियों की प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार (ऊर्ध्वस्वभावी लौ की भाँति) मैं भी आपके गुणों के प्रति आकर्षित हो रहा हूँ।

हे आदीश्वर! मेरा तन, धन, यौवन व प्राण सभी भले ही चले जाएँ पर यही चाह है कि आपके प्रति मेरी भक्ति यथावत अक्षुण्ण बनी रहे।

हे आदिदेव! मैंने अनेक देवताओं की सेवा-भक्ति की, परन्तु मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ बल्कि जैसे खोटा व्यापार करने से धन की हानि होती है, वैसे ही मैंने अपने सम्यक् ज्ञानधन की हानि की है।

हे श्री जिन! पुत्र, मित्र, स्त्री, सब अपने-अपने स्वार्थवश सगे हैं। भूधरदास समझाते हैं कि इस संसार के नरक-कूप से उद्धार का एकमात्र साधन आपके प्रति की गई भक्ति ही है।

जेम = जिस प्रकार। कुवनिज = खोटा व्यापार। गों = गरज, स्वार्थ।

(२)

राग पंचम

आज गिरिराज के शिखर सुन्दर सखी,
होत है अतुल कौतुक महा मनहरन॥
नाभि के नंद को, जगत के चंद को,
लेगये इंद्र मिलि, जन्ममंगल करन॥ आज.॥

हाथ-हाथन धरे, सुरन-कंचन घरे,
छीरसागर भरे, नीर निरमल बरन।
सहस अरु आठ गिन, एकही बार जिन,
सीस सुर ईशके, करन लागे ढरन॥ १॥ आज.॥

नचत सुरसुंदरी, रहस रससों भरी,
गीत गावैं अरी, देहि ताली करन।
देव-दुंदुभि बजैं, बीन बंशी सजैं,
एकसी परत, आनंदघन की भरन॥ २॥ आज.॥

इंद्र हर्षित हिये, नेत्र अंजुलि किए,
तृपति होत न पिये, रूप अमृत झरन।
दास 'भूधर' भनै, सुदिन देखे बनै,
कहि थके लोक लख, जीभ न सकै वरन॥ ३॥ आज.॥

हे सखी! आज पर्वतराज के सुंदर शिखर पर, मन को लुभानेवाला अनुपम, महान कौतुक (तमाशा)/उत्सव हो रहा है। इन्द्र आदि इस जगत के चन्द्र, नाभिराय के पुत्र श्री ऋषभदेव को उनका जन्मकल्याणक मनाने हेतु वहाँ लेकर गए हैं। पंक्तिबद्ध देवगण अपने-अपने हाथों में क्षीरसागर के निर्मल जल से भरे एक सौ आठ सुवर्ण कलश धरकर एकसाथ प्रभु के मस्तक पर कलश करने लगे हैं। देवांगनाएँ भक्ति रस से भरे गीत--गा--गाकर, ताली बजा-बजाकर नृत्य कर

(३)

राग बिलावल

रटि रसना मेरी ऋषभ जिनन्द, सुर नर जच्छ चकोरन चन्द॥ टेक॥
नामी नाभि नृपति के बाल, मरुदेवी के कुंवर कृपाल॥ १॥ रटि.॥
पूज्य प्रजापति पुरुष पुरान, केवल-किरन धरैं जगभान॥ २॥ रटि.॥
नरकनिवारन बिरद विख्यात, तारन-तरन जगत के तात॥ ३॥ रटि.॥
'भूधर' भजन दिढ़ै निरबाह, श्रीपद-पदम भंवर हो जाइ॥ ४॥ रटि.॥

हे मेरी रसना, तू सुर-नर-यक्षरूपी चकोर की भाँति, ऋषभ जिनेन्द्ररूपी चन्द्र को निरन्तर स्मरण कर, जप। कृपानिधान वे (ऋषभ) राजा नाभिकुमार और माता मरुदेवी के बालक हैं, पुत्र हैं। वे पुराणपुरुष पूज्य हैं, प्रजा के पालक हैं और जगत को प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानरूपी सूर्य की किरणों के धारक हैं। नरक से निवारण करना, बचाना आप की विशेषता है, गुण है। हे पूज्य! इस संसार-समुद्र से आप ही तारनेवाले हैं।

भूधरदास कहते हैं कि भगवान के चरण-कमल मेरे ध्यान के केन्द्र बन जायें अर्थात् उनके चरण-कमलों पर भ्रमर के समान (जैसा भ्रमर का कमल के प्रति अनुराग होता है) अनुराग हो जाये। उनके भजन-स्मरण करने से ही अपना निर्वाह हो सकेगा।

(४)

राग गौरी

मेरी जीभ आठौं जाम, जपि-जपि ऋषभजिनेंदजी का नाम॥ टेक॥
नगर अजुध्या उत्तम ठाम, जनमैं नाभि नृपति के धाम॥ १॥ मेरी.॥
सहस अठोत्तर अति अभिराम, लसत सुलच्छन लाजत काम॥ २॥ मेरी.॥
करि थुति गान थके हरि-राम, गनि न सके गणधर गुन ग्राम॥ ३॥ मेरी.॥
'भूधर' सार भजन परिनाम, अर सब खेल खेल के खांम॥ ४॥ मेरी.॥

ओ मेरी जिह्वा (जीभ)! तू आठों प्रहर अर्थात् दिन-रात सदैव श्री ऋषभ जिनेन्द्र के नाम का ही जप कर। शुभ अयोध्या नगरी में नाभिराजा के यहाँ उनका जन्म हुआ। एक सौ आठ सुलक्षणों से वे सुशोभित हैं, जिनको देखकर कामदेव भी लजाता है। इन्द्र आदि भी जिनकी स्तुति करते थक गये पर स्तुति नहीं कर सके। गणधर भी उनके गुणों का पार नहीं पा सके, गुणों की गणना नहीं कर सके।

भूधरदास कहते हैं कि उनका भजन, उनका स्मरण ही सारयुक्त है, फलदायक है, इसके अलावा सभी क्रियाएँ (खेल हैं) व्यर्थ हैं, निरर्थक - निरुपयोगी हैं।

खांम = निरर्थक।

(५)

आरती

आरती आदि जिनिंद तुम्हारी, नाभिकुमार कनक-छविधारी॥
जुगकी आदि प्रजा प्रतिपाली, सकल जनन की आरति टाली॥ १॥
बांछापूरन सबके स्वामी, प्रगट भये प्रभु अंतरजामी॥ २॥
कोटिभानुजुत आभा तनकी, चाहत चाह मिटे नहिं तनकी॥ ३॥
नाटक निरखि परम पद ध्यायो, राग थान वैराग उपायो॥ ४॥
आदि जगतगुरु आदि विधाता, सुरग मुकति-मारगके दाता॥ ५॥
दीनदयाल दया अब कीजे, 'भूधर' सेवकको ढिग लीजे॥ ६॥

हे आदि जिनेश्वर! हे सुवर्णवर्णी नाभिकुमार! आपकी आरती हो। युग के प्रारम्भ में आपने प्रजा का प्रतिपालन किया और सब जनों के कष्टों को दूर किया। सबकी कामना पूरी करनेवाले, सर्वदृष्टा, घट-घट की जाननेवाले प्रकट हुए। करोड़ों सूर्यों के तेज-सी आपके तन की आभा के प्रति हमारा अनुराग-प्रेम कम नहीं होता। (नीलांजना का) नृत्य देखकर आपको वैराग्य उपजा और तब आपने दीक्षा धारण कर परम-पद का ध्यान किया। हे आदि जगतगुरु! हे आदि विधाता (विधान करनेवाले)! आप स्वर्ग व मुक्ति का मार्ग देनेवाले हैं अर्थात् मार्गदर्शक हैं। हे दीनदयाल, अब तो दया कीजिए और इस सेवक भूधरदास को अपने निकट स्थान दीजिए।

ढिग = निकट, समीप।

(६)

राग रामकली

आदिपुरुष मेरी आस भरो जी। अवगुन मेरे माफ करो जी॥
दीनदयाल विरद बिसरो जी, कै विनती मोरी श्रवण धरो जी॥ आदि.॥

काल अनादि वस्यो जगमाँहीं, तुमसे जगपति जाने नाहीं।
पाँय न पूजे अंतरजामी, यह अपराध क्षमाकर स्वामी॥ १॥ आदि.॥

भक्तिप्रसाद परम पद ह्वै है, बँधी बंधदशा मिटि जैहै।
तब न करो तेरी फिर पूजा, यह अपराध छमो प्रभु दूजा॥ २॥ आदि.॥

'भूधर' दोष किया बखसावै, अरु आगैको लारैं लावै।
देखो सेवक की ढिठवाई, गरुवे साहिबसौं बनियाई॥ ३॥ आदि.॥

हे आदिपुरुष! मेरी आशा की पूर्ति करो, मेरे अवगुणों की ओर ध्यान न दो, उन्हें क्षमा कर दो। हे दीनदयाल! दीनों पर दया करनेवाले! यह आपका गुण है, विशेषता है। या तो मेरी विनती सुनो या अपने इस विरद (विशेषता) को, गुण को भूल जाओ, छोड़ दो। अनादिकाल से इस जगत में भ्रमण करता चला आ रहा हूँ पर आप-जैसे जगत्पति को मैं अब तक नहीं जान सका। हे सर्वज्ञ! इसलिए मैंने कभी आपकी वन्दना-स्तुति नहीं की। यह मेरा अपराध हुआ। हे प्रभु! इसके लिए मुझे क्षमा प्रदान करें।

आपकी भक्ति के परिणामस्वरूप (फलरूप) परम पद मिलता है, मुक्ति की प्राप्ति होती है और कर्म-बन्ध की दशा (जो कर्म बँधे हुए हैं) भी मिट जाती है। जब भविष्य में मेरे सब कर्म मिट जायेंगे तो मैं फिर आपकी पूजा नहीं करूँगा क्योंकि मैं भी तो मुक्त हो जाऊँगा, तब वह मेरा दूसरा अपराध होगा।

भूधरदास प्रार्थना करते हैं कि पूर्व में मेरे द्वारा किये गये दोषों को, गल्तियों को बख्श दो, माफ कर दो (अर्थात् मेरे अतीत को भूल जाएँ) और भविष्य को साथ लें अर्थात् भविष्य पर ध्यान करें। देखिए स्वामी - मुझ सेवक का यह कैसा ढीठपना है कि आप सरीखे महान स्वामी से भी मैं यह बनियागिरी की बात कर रहा हूँ।

(७)

राग जोगी

अजित जिनेश्वर अघहरणं, अघहरणं अशरन-शरणं॥
निरखत नयन तनक नहिं त्रिपते, आनँदजनक कनक-वरणं॥

करुणा भीजे वायक जिनके, गणनायक उर आभरणं।
मोह महारिपु घायक सायक, सुखदायक, दुखछय करणं॥ १॥

परमातम प्रभु पतित-उधारन, वारण-लच्छन-पगधरणं।
मनमथमारण, विपति विदारण, शिवकारण तारणतरणं॥ २॥

भव-आताप-निकंदन-चंदन, जगवंदन बांछा भरणं।
जय जिनराज जगत वंदत जिहँ, जन 'भूधर' वंदत चरणं॥ ३॥

हे अजित जिनेश्वर! आप पापों को हरनेवाले हैं, पापों का नाश करनेवाले हैं। जिनको कोई शरण देनेवाला नहीं है, आप उनको शरण देनेवाले हैं। आपके दर्शन करते हुए नेत्रों को तृप्ति नहीं होती अर्थात् दर्शन करते हुए मन नहीं भरता। आप ऐसे आनंद के जनक हैं जनमदाता हैं, आपका गात (शरीर) सुवर्ण-सा है।

आपका दिव्योपदेश पूर्ण करुणा से भीगा हुआ है, वह ही गणधर के हृदय का आभूषण है। (वह उपदेश) मोहरूपी महान शत्रु को नाश करनेवाले तीर के समान है, सुख देनेवाला है, दुःख का नाश करनेवाला है। हे परमात्मा! हे प्रभु! आप (आचरण से) गिरे हुए जनों का उद्धार करनेवाले हैं, आपके चरणों में हाथी का लांछन है (चिह्न है)। आप कामदेव का नाश करनेवाले हैं, विपत्तियों को दूर करनेवाले हैं, मोक्ष के कारण हैं, भवसागर से पार उतारनेवाले हैं। भवभ्रमण के ताप को मेटने के लिए आप चंदन के समान शीतल हैं, आप जगत के द्वारा पूज्य हैं और कामनाओं की पूर्ति करनेवाले हैं। जैसे सारा जगत वंदना करता है वैसे ही समवसरण में आसीन आपके ऐसे चरणों की भूधरदास वंदना करता है।

वायक – वचन। घायक – नाश करना। सायक = तीर, बाण।
वारण लच्छन – हाथी का चिह्न। मनमथमारण = कामदेव का नाश करनेवाले।

(८)

राग प्रभाती

अजित जिन विनती हमारी मान जी, तुम लागे मेरे प्रान जी।
तुम त्रिभुवन में कलप तरुवर, आस भरो भगवानजी॥

वादि अनादि गयो भव भ्रमतै, भयो बहुत कुल कानजी।
भाग संयोग मिले अब दीजे, मनवांछित वरदान जी॥ १॥

ना हम मांगैं हाथी-घोड़ा, ना कछु संपति आनजी।
'भूधर' के उर बसो जगत-गुरु, जबलौं पद निरवान जी॥ २॥

हे अजितनाथ भगवान! हमारी विनती स्वीकार करो। मेरे प्राण! मेरा जीवन तुम्हारे साथ लग गया, तुम्हारी शरण में आ गया हैं। आप तीन लोक में कल्पवृक्ष हैं अत: हे भगवान! मेरी भी आशा पूरी करो। अनादिकाल से ही मैं भव-भव में वृथा भ्रमण कर रहा हूँ। अनेक भवों को मर्यादा में सीमित रहा हूँ। अब भाव भी हुए हैं और संयोग भी मिला है, मुझे अब मनवांछित वर प्रदान करो।

हम आपसे हाथी-घोड़े की माँग नहीं करते और न कोई अन्य प्रकार की संपत्ति ही चाहते हैं। भूधरदास कहते हैं कि आप हमारे हृदय में तब तक रहो, जब तक हमें मुक्ति की, निर्वाण की प्राप्ति न हो।

वादि = व्यर्थ। कुलकान = कुल की मर्यादा।

(९)

राग ख्याल कान्हड़ी

एजी मोहि तारिये शान्तिजिनंद॥ टेक॥

तारिये तारिये अधम उधारिये, तुम करुना के कंद॥ १॥

हथनापुर जनमैं जग जानैं, विश्वसेन नृपनन्द॥ २॥

धनि वह माता एरादेवी, जिन जाये जगचन्द॥ ३॥

'भूधर' विनवै दूर करो प्रभु, सेवक के भव-द्वन्द॥ ४॥

ऐ शान्तिनाथ भगवान! मुझको तारो, मुझको पार लगाओ। आपने बहुत से पापियों का उद्धार किया है, उन्हें पार किया है, मुझ को भी तारो (पार लगाओ)। आप तो करुणा के कंद हो, पिंड/समूह हो। सारा जगत जानता है कि आप हस्तिनापुर नरेश विश्वसेन के पुत्र हैं। आपकी जन्मदात्री माता एरादेवी धन्य हैं जिन्होंने आप जैसे जगत-चन्द्र को जन्म दिया।

भूधरदास विनती करते हैं कि हे प्रभु! इस सेवक को भवजाल अर्थात् संसार के जाल से मुक्त करो।

(१०)

राग सोरठ

भगवन्त भजन क्यों भूला रे॥ टेक॥
यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि बबूला रे॥

इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तृण-पूलारे।
काल कुदार लिये सिर ठाड़ा, क्या समझै मन फूला रे॥ १॥

स्वारथ साधै पाँच पाँव तू, परमारथको लूला रे।
कहु कैसे सुख पैहै प्राणी, काम करै दुखमूला रे॥ २॥

मोह पिशाच छल्यो मति मारै, निज कर कंध वसूला रे।
भज श्रीराजमतीवर 'भूधर', दो दुरमति सिर धूला रे॥ ३॥

हे जीव! भगवान के भजन गाना, गुणगान-स्मरण करना क्यों भूल गया रे? यह संसार रात्रि के स्वप्न की भाँति (अस्थिर) है, और तन व धन पानी में उठे बबूले की भाँति (क्षणिक) हैं। इस जीवन का क्या भरोसा है, इसका अस्तित्व अग्नि में पड़े तिनकों के ढेर के समान है। मृत्यु सदैव मस्तक ऊँचा किए सम्मुख खड़ी हुई है। (ऐसे में) तू क्या समझकर अपने मन ही मन में फूल रहा है?

अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए तू पाँच पाँव चलता है अर्थात् उद्यम करता है। किन्तु परमार्थ (स्वभाव-चिंतन) के लिए अपने को असमर्थ/पंगु मान रहा है। हे प्राणी! तू काम तो दुःख उपजाने के करता है तो तुझे सुख की प्राप्ति कैसे हो?

मोहरूपी पिशाच कंधे पर वसूला (बढ़ई का एक औजार) रखकर तेरा मति भ्रष्ट कर रहा है, तुझे छल रहा है अर्थात् तू मोहवश पथभ्रष्ट हो रहा है। भूधरदास तुझे सुझा रहे हैं कि हे प्राणी! तू राजुल के पति भगवान श्री नेमिनाथ का स्मरण कर, उनका भजन कर और दुर्मति के सिर पर धूल मार अर्थात् अविवेकी मति को छोड़।

वारि = पानी। बबूला = बुलबुला। तृणपूला = तिनकों का ढेर। लूला = लँगड़ा।

(११)

राग ख्याल

अब नित नेमि नाम भजौ ॥ टेक ॥

सच्चा साहिब यह निज जानौ, और अदेव तजौ ॥ १ ॥

चंचल चित्त चरन थिर राखो, विषयनतैं वरजौ ॥ २ ॥

आननतैं गुन गाय निरन्तर, पानन पांय जजौ ॥ ३ ॥

'भूधर' जो भवसागर तिरना, भक्ति जहाज सजौ ॥ ४ ॥

हे जीव! अब सदा नेमिनाथ का नाम जप, उनका भजन कर। ये ही सच्चे साहिब (पूज्य) हैं, ऐसा मन में जानो। जो देव नहीं हैं उनकी मान्यता को छोड़ो। अपने चंचल चित्त को प्रभु के चरणों में स्थिर रखकर इन्द्रिय-विषयों को छोड़ो, उनसे बचो। अपने मुँह से सदैव प्रभु के गुण गावो और दोनों हाथों से उनके चरणों की पूजा करो, उनमें नत हो जाओ, उनमें नमन करो।

भूधरदास कहते हैं कि जो भवसागर से तिरना चाहते हो तो भक्तिरूपी नैया/नौका को सुशोभित करो, उसे सजाओ।

आनन - मुख। पानन = हाथ। जजौं = नमन करो।

(१२)

राग ख्याल

मा विलंब न लाव पठाव तहां री, जहँ जगपति पिय प्यारो॥
और न मोहि सुहाय, कछु अब, दीसै जगत अंधारो री॥

मैं श्रीनेमिदिवाकरको कब, देखों बदन उजारो।
बिन विन देखैं मुरझाय रह्यो है, उर अरविंद हमारो री॥ १॥

तन छाया ज्यौं संग रहौंगी, वे छांडहिं तो छारो।
विन अपराध दंड मोहि दीनो, कहा चलै मेरो चारो॥ २॥

इहि विधि रागउदय राजुलनैं, सह्यो विरह दुःख भारो।
पीछैं ज्ञानभान बल विनश्यो, मोह महातम कारो री॥ ३॥

पियके पैंडें पैंडो कीनों, देखि अथिर जग सारो।
'भूधर' के प्रभु नेमि पियासौं, पाल्यौ नेह करारो री॥ ४॥

राजुल विनती कर रही है कि विलंब मत करो, मुझे वहाँ पहुँचा दो जहाँ जगत के स्वामी, मेरे प्रियतम (नेमिकुमार) हैं। मुझे अब कुछ भी नहीं सुहाता। सारा जगत अंधकारमय दीख रहा है। सूर्य के समान नेमिनाथ के उज्ज्वल मुख के दर्शन मुझे कब होंगे? जिसे देखे बिना मेरा हृदयरूपी कमल मुरझा रहा है। मैं शरीर की छाया के समान सदा उनके संग रहूँगी, वे मुझे छोड़ें तो भले ही छोड़ दें। बिना किसी अपराध के मुझे यह दंड मिला है, इसमें मेरा किसी भी प्रकार का दोष नहीं है, मेरा कोई वश नहीं है। इस प्रकार मोहवशीभूत होकर राजुल वियोग की भारी वेदना से ग्रस्त हुई। तत्पश्चात् ज्ञान-सूर्य के प्रकट होने पर मोह की गहन कालिमा नष्ट हो गई। तब उन्होंने इस संसार को अस्थिर जानकर प्रियतम का पग-पग पर अनुसरण किया अर्थात् जिन-दीक्षा धारण कर ली। भूधरदास कहते हैं कि इस प्रकार राजुल ने अपने प्रियतम भगवान नेमिनाथ के प्रति अतिशय प्रेम का निर्वाह किया।

लाव - कर। पठाव = पहुँचाना।

(१३)

राग बिहागरो

नेमि बिना न रहै मेरो जियरा ॥ टेक ॥

हेर री हेली तपत उर कैसो, लावत क्यों निज हाथ न नियरा ॥ १ ॥

करि करि दूर कपूर कमल दल, लगत करूर कलाधर सियरा ॥ २ ॥

'भूधर' के प्रभु नेमि पिया बिन, शीतल होय न राजुल हियरा ॥ ३ ॥

राजुल अपनी सखी से अपनी व्यथा कह रही है - हे सखी! नेमिनाथ के बिना मेरा जी (मन) नहीं लगता। विरह में मेरा हृदय अग्नि की भाँति कैसा तप रहा है, यह देखने के लिए - यह अनुभव करने के लिए तू मेरा हाथ उसके समीप क्यों नहीं ले जाती!

नेमिनाथ के वियोग में मुझे कपूर, कमलपुष्प और शीतल चन्द्रमा भी क्रूर-असुहावने लगते हैं, उनका सामीप्य भी नहीं सुहाता, उन्हें भी दूर करना पड़ता है।

भूधरदास कहते हैं कि मेरे प्रभु और राजुल के प्रिय नेमिनाथ के बिना राजुल के हृदय को किसी भाँति भी शान्ति नहीं है यानी शीतलता अनुभव नहीं हो रही।

हेली = सहेली। नियरा = निकट। करूर = क्रूर। सियरा = शीतल, ठण्डा।

(१४)

राग ख्याल

देख्यो री! कहीं नेमिकुमार॥
नैंननि प्यारो नाथ हमारो, प्रान-जीवन प्रानन-आधार॥ देख्यो.॥

पीव वियोग विथा बहु पीरी, पीरी भई हलदी उनहार।
होउं हरी तबही जब भेटों, श्यामवरन सुन्दर भरतार॥ १॥ देख्यो.॥

विरह नदी असराल बहै उर, बूढ़त हौं वामें निरधार।
'भूधर' प्रभु पिय खेवटिया बिन, समरथ कौन उतारनहार॥ २॥ देख्यो.॥

राजुल अपनी सखी से अपने प्रिय नेमिकुमार के बारे में पूछती है - हे सखी! क्या कहीं नेमिकुमार को देखा है? नैनों को प्यारे लगनेवाले वे हमारे स्वामी हमारे प्राण हैं, जीवन हैं, प्राणों के आधार हैं।

राजुल को प्रियतम की वियोग-व्यथा अत्यन्त पीड़ादायक है, दु:खदायक है, उस वियोग में वह हल्दी के समान पीली पड़ गई है। श्याम वर्ण के सुन्दर प्रियतम से भेंट होने पर ही वह हरी हो सकती है अर्थात् तब ही वह प्रसन्नता पुन: लौट सकती है, प्राप्त हो सकती है।

विरह-विछोह की गहनता में, अथाह प्रवाह/नदी में निराधार (यह आधारहीन) हृदय डूब रहा है, विकल हो रहा है। भूधरदास कहते हैं कि प्रभु प्रियतम के सिवा इस दुखसागर से पार उतारने में अन्य कोई खेवटिया नहीं है, अन्य कोई समर्थ नहीं है।

पीरी = पीड़ा की। पीरी = पीली। उनहार - समान। असराल = अथाह। बूढ़त = डूबना।

(१५)

राग विहाग

तहां लै चल री! जहां जादौपति प्यारो॥ टेक॥
नेमि निशाकर बिन यह चन्द्रा तन मन दहत सकल री॥
किरन किधौं नाविक-शर-तति कै, ज्यों पावक की झलरी।
तारे हैं अंगारे सजनी, रजनी राकसदल री॥ १॥
इह विधि राजुल राजकुमारी, विरह तपी वेकल री।
'भूधर' धन्न शिवासुत बादर, बरसायो समजल री॥ २॥

हे सखी! मुझे वहाँ ले चल जहाँ यदुवंश के स्वामी (मेरे) प्रिय श्री नेमिनाथ हैं। नेमिनाथरूपी चन्द्रमा के बिना, इस लौकिक चन्द्रमा से सारे तन-मन में दाह हो रहा है। उसकी किरणें बाण की चुभन की तरह तीखी व मधुमक्खी के डंक के समान काट रही हैं, उसकी जलन आग की लपट जैसी है। तारे अंगारे के समान व रात्रि राक्षसदल-सी भयावनी लगती है।

इस प्रकार राजकुमारी राजुल विरह-ताप से व्याकुल हो रही है। भूधरदास कहते हैं कि समतारूपी जल की वर्षा करनेवाले भगवान नेमिनाथरूपी बादल धन्य हैं।

नाविक (नावक)-शर - छोटा बाण, मक्खी का डंक।
शिवासुत = शिवादेवी के पुत्र नेमिनाथ।
बादर - बादल।

(१६)

राग काफी होरी

अहो बनवासी पिया तुम क्यों छारी अरज करै राजुल नारी।
तुम तो परम दयाल सबन के, सबहिन के हितकारी॥ अरज.॥

मो कठिन क्यों भये सजना, कहीये चूक हमारी।
तुम बिन एक पलक पिया, मेरे जाय पहर सम भारी।
क्यों करि निस दिन भर नेमजी, तुम तौ ममता डारी॥ १॥ अरज.॥

जैसे रैनि वियोगज चकई तौ बिलपै निस सारी।
आसि बांधि अपनी जिय राखै प्रात मिलयो या प्यारी॥
मैं निरास निरधार निरमोही जिउ किम दुख्यारी॥ २॥ अरज.॥

अब ही भोग जोग हौ बालम देखौ चित्त विचारी।
आगै रिषभ देव भी ब्याही कच्छ-सुकच्छ कुमारी॥
सोही पंथ गहो पीया पाछै हां ज्यो संजम धारो॥ ३॥ अरज.॥

जैसे बिरहै नदी मैं व्याकुल उग्रसैन की बारी।
धनि धनि समदबिजै के नंदन बूढत पार उतारी॥
सो ही किरपा करौ हम उपरि 'भूधर' सरण तिहारी॥ ४॥ अरज.॥

हे भगवान नेमिनाथ! हे वनवासी पिया, तुमने मुझे क्यों छोड़ दिया? राजुल (नामकी नारी) आपसे यह अरज करती है। आप तो सभी जीवों के प्रति अत्यन्त दयालु हो, सबका हित करनेवाले हो फिर मेरी ओर ही इतने कठोर क्यों हो गए? कहिए - क्या हमारी कोई चूक/गलती हो गई है? हे प्रिय! तुम्हारे बिना एक-एक पल का समय भी एक-एक प्रहर के समान भारी/बड़ा लग रहा है, जैसे-तैसे रात-दिन बीत रहे हैं। हे प्रियतम नेमिनाथ! आपने तो सारी ममता छोड़ दी।

चकवी अपने प्रिय के वियोग के कारण रातभर विलाप करती है और आशावान होकर अपने को ढाढस देती है कि सुबह होते ही उसका प्यारा चकवा

उससे मिल जावेगा। राजुल जी कहती हैं - किन्तु मैं दुखियारी, निराश (जिसे मिलन की आशा नहीं दिखती), बिना सहारे, बिना प्रेम के किस प्रकार जीवनयापन करूँ? हे प्रियतम! भोग के स्थान पर आपने अभी ही योग धारण कर लिया! जरा चित्त में विचार तो कीजिए! पूर्व में भगवान ऋषभदेव ने कच्छ व सुकच्छ की कुमारियों के साथ विवाह किया था और उसके पश्चात् ही संयम धारणकर इस पंथ पर आरूढ़ हुए थे, चले थे। हे प्रियतम! आप भी वही मार्ग अपनाते। पहले विवाह करते फिर बाद में संयम धारण करते! मैं उग्रसेन की पुत्री विरह की नदी में अत्यन्त व्याकुल हूँ।

आप, राजा समुद्रविजय के पुत्र, धन्य हैं, जो डूबते हुए जीवों को भवसागर के पार उतारते हैं। हमारे साथ भी कृपा करो। भूधरदास कहते हैं कि हम आपकी ही शरण में हैं।

(१७)

देखो गरब-गहेली री हेली! जादोंपतिकी नारी ॥ टेक ॥

कहां नेमि नायक निज मुखसौं, टहल कहै बड़भागी।
तहां गुमान कियो मतिहीनी, सुनि उर दौसी लागी ॥ १ ॥ देखो. ॥

जाकी चरण धूलिको तरसैं, इन्द्रादिक अनुरागी।
ता प्रभुको तन-वसन न पीड़ै, हा! हा! परम अभागी ॥ २ ॥ देखो. ॥

कोटि जनम अघभंजन जाके, नामतनी बलि जइये।
श्री हरिवंशतिलक तिस सेवा, भाग्य बिना क्यों पइये ॥ ३ ॥ देखो. ॥

धनि वह देश धन्य वह धरनी, जग में तीरथ सोई।
'भूधर' के प्रभु नेमि नवल निज, चरन धरे जहां दोई ॥ ४ ॥ देखो. ॥

हे सहेली! यदुपति (नेमिनाथ) की नारी की गर्वोन्मत्तता को देखो। कहाँ तो उस बुद्धिहीना को यह गर्व था - मैं इतनी भाग्यशाली हूँ कि नेमिनाथ अपने मुख से मुझे सेवा हेतु कहेंगे। पर जब नेमिकुमार का हाल सुना तो उसका हृदय आग-सा झुलस उठा। उनके तन पर कपड़ों की भी पीड़ा नहीं है अर्थात् वे नग्न दिगम्बर हो गए। इन्द्रादिक सरीखे भक्त भी जिसकी चरणधूलि के लिए तरसते हैं। हा हा, वह राजुल कितनी अभागिन है! हरिवंश-तिलक, श्रेष्ठ, भगवान नेमिनाथ की सेवा-भक्ति का अवसर बिना भाग्य के प्राप्त नहीं होता। ऐसे पापों का नाश करनेवाले के नाम पर करोड़ों जन्मों की बलिहारी है। भूधरदास कहते हैं कि सुन्दर नेमिकुमार जहाँ अपने दोनों चरण धरते हैं वह देश धन्य है, वह धरती धन्य है, वह स्थान जगत में तीर्थरूप में सुशोभित है।

दौसी = (दव-सी) दावाग्नि-सी।

(१८)

राग ख्याल

जग में जीवन थोरा, रे अज्ञानी जागि॥टेक॥

जनम ताड़ तरुतैं पड़ै, फल संसारी जीव।
मौत महीमैं आय हैं, और न ठौर सदीव॥ १॥ जगमें.॥

गिर-सिर दिवला जोइया, चहुंदिशि बाजै पौन।
बलत अचंभा मानिया, बुझत अचंभा कौन॥ २॥ जगमें.॥

जां छिन जाय सो आयुमैं, निशि दिन ढूकै काल।
बांधि सकै तो है भला, पानी पहिली पाल॥ ३॥ जगमें.॥

मनुष देह दुर्लभ्य है, मति चूकै यह दाव।
भूधर राजुलकंतकी, शरण सिताबी आव॥ ४॥ जगमें.॥

ओ अज्ञानी! तू चेत, जाग। इस जगत में यह जीवन बहुत थोड़ा है। यह तेरा जीवन ऊँचे ताड़वृक्ष से गिरे हुए फल की भाँति है, मृत्यु होने पर यह मिट्टी में मिल जाता है, इसको अन्यत्र कहीं स्थान नहीं है।

जैसे कोई ऊँचे पहाड़ की चोटी पर जहाँ चारों ओर से पवन के झोंके आ रहे हैं, दीपक जलावे और ऐसे में वह दीपक जल रहा हो, यह तो आश्चर्य है, उसके बुझ जाने पर क्या आश्चर्य? इस आयु में जो क्षण बीत जाय, वह ही जीवन है, क्योंकि मृत्यु तो दिन-रात आई खड़ी है। जैसे बरसात के जल-प्लावन (बाढ़ आने) से पूर्व पाल बाँधकर बचाव करते हैं तो ही भला होता है (वैसे ही तुझे मृत्यु आने से पूर्व अपने बचाव के लिए कुछ करना है तो करले)। यह मनुष्य देह पाना अत्यन्त दुर्लभ है, यह अवसर मत चूक और राजुल के कंत भगवान नेमिनाथ की शरण में शीघ्र ही आ जा।

दिवला - दीपक। बाजै - चले। ढूके - निकट आवे। सिताबी = शीघ्रता से।

(१९)

राग सोरठ

मेरे मन सूवा, जिनपद पींजरे वसि, यार लाव न बार रे॥ टेक॥

संसार सेंवलबृच्छ सेवत, गयो काल अपार रे।
विषय फल तिस तोड़ि चाखे, कहा देख्यौ सार रे॥ १॥

तू क्यों निचिन्तो सदा तोकों, तकत काल मंजार रे।
दावै अचानक आन तब तुझे, कौन लेय उबार रे॥ २॥

तू फंस्यो कर्म कुफन्द भाई, छुटै कौन प्रकार रे।
तैं मोह-पंछी-वधक-विद्या, लखी नाहिं गंवार रे॥ ३॥

है अजौं एक उपाय 'भूधर', छुटै जो नर धार रे।
रटि नाम राजुल-रमन को, पशुबंध छोड़नहार रे॥ ४॥

तोते के समान चंचल ऐ मेरे मन! तू जिनेन्द्र के चरणकमलरूपी पिंजरे में ही निवास कर, उससे बाहर मत आ। बाहर तो इस संसाररूपी सेमल वृक्ष की सेवा-संभाल करते-करते बहुत काल व्यतीत कर दिया, जिसके विषयरूपी फलों को तोड़कर चखने पर उसमें कुछ भी रस-सार नहीं दीखा। काल (मृत्यु) की दृष्टि सदैव तुझ पर है, उसके बीच तू क्यों व कैसे निश्चिंत हो रहा है? वह अचानक ही आकर जब तुझे दबोचेगा, तो कोई भी तुझे उससे छुटकारा नहीं दिला सकेगा।

तू मोहवश निरर्थक व छोटे कर्मों के जाल में उस मूर्ख-नादान पंछी की भाँति फँस रहा है, तुझको कालरूपी शिकारी की चाल व मारक विद्या का बोध ही नहीं है, तब तू कैसे उससे छूटेगा?

हे नर! संसाररूपी जाल से छूटने का एक ही उपाय है। भूधरदास उसे बतलाते हुए कह रहे हैं कि राजुलरमन भगवान नेमिनाथ के नाम का स्मरण कर, जो बंध से जकड़े पशुओं का भी उद्धार करनेवाले हैं।

(२०)

नेमिनाथजी की विनती

त्रिभुवनगुरु स्वामी जी, करुणानिधि नामी जी।
सुनि अंतरजामी, मेरी वीनतीजी॥ १॥

मैं दास तुम्हारा जी, दुखिया बहु भारा जी।
दुख मेटनहारा, तुम जादोंपती जी॥ २॥

भरम्यो संसारा जी, चिर विपति-भँडारा जी।
कहिं सार न सारे, चहुँगति डोलियो जी॥ ३॥

दुख मेरु समाना जी, सुख सरसों दाना जी।
अब जान धरि ज्ञान, तराजू तोलिया जी॥ ४॥

थावर तन पाया जी, त्रस नाम धराया जी।
कृमि कुंथु कहाया, मरि भँवरा हुवा जी॥ ५॥

पशुकाया सारी जी, नाना विधि धारी जी।
जलचारी थलचारी, उड़न पखेरु हुवा जी॥ ६॥

नरकनके माहीं जी, दुख ओर न काहीं जी।
अति घोर जहाँ है, सरिता खार की जी॥ ७॥

पुनि असुर संघारै जी, निज वैर विचारैं जी।
मिलि बांधैं अर मारैं, निरदय नारकी जी॥ ८॥

मानुष अवतारै जी, रह्यो गरभमँझारै जी।
रटि रोयो जैनमत, धारैं मैं घनों जी॥ ९॥

जोवन तन रोगी जी, कै विरहवियोगी जी।
फिर भोगी बहुविधि, विरधपनाकी वेदना जी॥ १०॥

सुरपदवी पाई जी, रंभा उर लाई जी।
तहाँ देखि पराई, संपति झूरियो जी॥ ११॥

माला मुरझानी जी, तब आरति ठानी जी।
तिथि पूरन जानी, भरत धिसूरियां जी॥ १२॥

यों दुख भवकेरा जी, भुगतो बहुतेरा जी।
प्रभु! मेरे कहतै, पार न है कहीं जी॥ १३॥

मिथ्यामदमाता जी, चाही नित साता जी।
सुखदाता जगत्राता, तुम जाने नहीं जी॥ १४॥

प्रभु भागनि पाये जी, गुन श्रवन सुहाये जी।
तकि आयो अब सेवककी, विपदा हरो जी॥ १५॥

भववास बसेरा जी, फिरि होय न मेरा जी।
सुख पावै जन तेरा, स्वामी! सो करो जी॥ १६॥

तुम शरनसहाई जी, तुम सज्जनभाई जी।
तुम माई तुम्हीं बाप, दया मुझ लीजिये जी॥ १७॥

'भूधर' कर जौरे जी, ठाड़ो प्रभु ओरै जी।
निजदास निहारो, निरभय कीजिये जी॥ १८॥

हे स्वामी! आप तीन लोक के गुरु हैं, करुणा के सागर हैं, ऐसा आपका यश है। हे सर्वज्ञ! मेरी विनती सुनो।

हे यदुपति भगवान नेमिनाथ! मैं आपका दास हूँ। मुझ पर दुःखों का बहुत भार है। आप ही दुःख मेटनेवाले हो। यह संसार विपत्तियों का भंडार है, जिसमें मैं भटक रहा हूँ। चारों गतियों में मैं घूम चुका हूँ पर इसमें कहीं भी कोई सार नहीं है। इसमें दुःख सुमेरु पर्वत के समान दीर्घ हैं और सुख सरसों के दाने के समान (लघु/छोटा)। यह अब ज्ञान के द्वारा माप-तौलकर जान लिया है। कभी स्थावर तन पाया और कभी त्रस कहलाया। कभी कीड़ा, कुंथु (कनखजूरा) कहलाया और कभी मरकर भँवरा हुआ। सब प्रकार के पशु तन अनेक बार धारण किए। मैं कभी जलचर, कभी थलचर और कभी नभचर हुआ। नरक में दुःखों

के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, वहाँ खार की नदी यानी तीक्ष्ण नदी बहती है। फिर असुर-नारकी अपना वैर विचारकर संहार करते हैं। निर्दय नारकी मिलकर बाँधकर भाँति-भाँति की यातनाएँ देते हैं। फिर मनुष्य जन्म पाया तब माता के गर्भ में रहा। जनम होते ही मैं बार-बार बहुत रोया। यौवन में विरह व वियोग की अनुभूति व पीड़ा हुई? अनेक प्रकार के भोग-साधन किए पर, फिर वृद्धपने की वेदना भोगनी पड़ी। फिर देव हुआ, देवांगनाओं में रमता रहा और पराई संपत्ति-वैभव को देखकर ईर्ष्यावश दु:खी होता रहा। फिर माला मुरझा गई यानी मृत्युकाल समीप आ गया। यह जानकर मन में दु:खी हुआ पर आयु पूरी हो गई और दु:खी होकर मरा। इस प्रकार भवभ्रमण के बहुतेरे दु:ख भोगे, जिनको कहा नहीं जा सकता, वे अपार हैं। मिथ्यात्व के मद में डूब मैं नित ही सुख की कामना करता रहा। पर सुख के दाता और जगत को दुख से मुक्त करानेवाले आपको मैंने नहीं जाना, नहीं पहचाना। प्रभु! अब भाग्य से आपको पाया है, आपके विरदगान (गुणगान) कानों को सुहाने लगे हैं। यह देखकर आपकी शरण में आए हुए इस सेवक की विपदाएँ दूर कीजिए। संसार में मैं कभी पुन: निवास न करूँ, आवागमन न करूँ, ऐसा सुख मिले, ऐसा हो कीजिए।

आप शरणागत के शरणदाता हैं, सहायक हैं, सहृदय भाई, माता-पिता सब आप हैं, मेरी ओर भी कृपा-दृष्टि कीजिए। भूधरदास हाथ जोड़कर इस ओर खड़ा हुआ है, अपने दास की ओर देखकर, उसे निर्भय कीजिए।

विरधपना = वृद्धावस्था। झूरना = दु:खी होना। विसूरिया = शोक संतप्त होना, रोना।

(२१)

पारस-पद-नख प्रकाश, अरुन वरन ऐसो ॥ टेक ॥

मानो तप, कुंजरके, सीसको सिंदूर पूर।
रागरोषकाननकों-दावानल जैसो ॥ १ ॥ पारस. ॥

धोअमई प्रातकाल, लाली रवि उदय लाल।
मोक्षवधू-कुच-प्रलेप, कुंकुमाभ तैसो ॥ २ ॥ पारस. ॥

कुशल-वृक्ष-दल-उलास, इहविधि बहु गुण-निवास।
'भूधर' की भरहु आस, दीनदास केसो ॥ ३ ॥ पारस. ॥

हे भगवान पार्श्वनाथ! आपके चरणों के अग्रभाग से फैल रहा लाल रंग का प्रकाश ऐसा है जैसे आपके तप से राग-द्वेषरूपी जंगल में दावाग्नि भड़क उठी हो, और वह ऐसा भास रहा है मानो किसी गजराज का सिन्दूर से पूरित मस्तक सुशोभित हो रहा हो। आपके चरणों का वह प्रकाश ऐसा है जैसे प्रात:काल के उदय होते हुए सूर्य की लाली होती है, केवलज्ञान होने पर जैसे मोक्षरूपी वधू के स्तनों पर कुंकुम के लेप की शोभा हो रही हो वैसी आभा प्रकाशित हो रही है। जैसे पूर्ण विकसित वृक्ष की उल्लसित कोपलें फूटती हैं, वैसे ही हे प्रभु, आपके गुण प्रकट हो रहे हैं। भूधरदास विनती करते हैं कि मैं निर्बल और निर्धन आपका ही दास हूँ, मेरी आस पूरी कीजिए।

अरुन - लाल। कुंजर = हाथी। रागरोषकानन = राग-द्वेषरूपी वन।

(२२)

राग ख्याल

अरे! हां चेतो रे भाई॥

मानुष देह लही दुलही, सुघरी उघरी सतसंगति पाई॥ १॥

जे करनी वरनी करनी नहिं, ते समझी करनी समझाई॥ २॥

यों शुभ थान जग्यो उर ज्ञान, विषै विषपान तृषा न बुझाई॥ ३॥

पारस पाय सुधारस 'भूधर', भीखके मांहि सुलाज न आई॥ ४॥

अरे भाई! संभलो और चेत करो। मनुष्य की दुर्लभ देह तुम्हें मिली है, और अच्छी घड़ी (समय) प्रकट हुई है कि तुम्हें सत्संगति का अवसर मिला है। (इस मनुष्य देह से) जैसी करनी (करने योग्य कार्य) कही गई है वैसी करनी तो तुम करते नहीं/समझते नहीं। इसलिए (बार-बार) करनी समझाई जाती है।

अब इस शुभ स्थान (मनुष्य जीवन) में अन्तर में ज्ञान जगा है कि विषयरूपी विष का पान करने से प्यास नहीं बुझती, तृष्णा नहीं मिटती।

अब भगवान पारसनाथ के अमृतसम दर्शन हुए हैं, भूधरदास कहते हैं कि उनसे याचना करने में मुझको कोई लाज नहीं है।

दुलही = दुर्लभ।

(२३)

राग सारङ्ग

जपि माला जिनवर नामकी।
भजन सुधारससों नहिं धोई, सो रसना किस कामकी॥ जपि.॥

सुमरन सार और सब मिथ्या, पटतर धूंवा नाम की।
विषम कमान समान विषय सुख, काय कोथली चामकी॥ १॥ जपि.॥

जैसे चित्र-नाग के मांथै, थिर मूरति चित्रामकी।
चित आरूढ़ करो प्रभु ऐसे, खोय गुंडी परिनामकी॥ २॥ जपि.॥

कर्म बैरि अहनिशि छल जोवैं, सुधि न परत पल जामकी।
'भूधर' कैसैं बनत विसारैं, रटना पूरन रामकी॥ ३॥ जपि.॥

(हे भव्य!) श्री जिनवर की माला जपो। जिनेन्द्र की भक्ति-स्तवन से जिसने अपनी रसना (जीभ-जिह्वा) को नहीं धोया वह रसना (जीभ) अन्य किस मतलब की है?

जिनेन्द्र का स्मरण ही सारयुक्त है, उनकी तुलना में और सब झूठ है, नाममात्र का है, थोथा है। यह देह चमड़े की थैली है और विषयों के सुखाभास कठोर बाण के समान पीड़ादायक हैं, कष्टदायक हैं।

भित्तिचित्र में चित्रित नाग के सिर पर विराजित भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रशान्त और स्थिर है, उस स्थिर मुद्रा को फल की इच्छा/चिन्तारहित होकर अपने चित्त में आरूढ़ करो और अपना चित्त भी उनके समान स्थिर करो।

ये कर्म-शत्रु दिन-रात इतना छल रहे हैं कि एक क्षण भी उनका (भगवान पार्श्वनाथ का) स्मरण नहीं होता। भूधरदास कहते हैं कि उसके स्मरण के बिना तेरा प्रयोजन कैसे सिद्ध होगा अर्थात् उनके जप-स्मरण से ही तेरी सिद्धि होगी।

पटतर = तुलना में, मुकाबले में।

पारस प्रभु को नाऊँ, सार सुधारस जगत में।
मैं वाकी बलि जाऊँ, अजर अमर पद मूल यह।

राजत उतंग अशोक तरुवर, पवन प्रेरित थरहरै।
प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानों मन हरै।
तस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥ १॥

निज मरन देखि अनंग डरप्यो, सरन ढूंढत जग फिर्‌यो।
कोई न राखे चोर प्रभु को, आय पुनि पायनि गिर्‌यो।
यौं हार निज हथियार डारे, पुहुपवर्षा मिस भनी।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥ २॥

प्रभु अंग नील उतंग गिरितैं, त्रिनि सुरनि सरिता ढली।
सो भेदि भ्रमगजदंत पर्वत, ज्ञान सागर मैं रली।
नय सप्तभंग तरंग मंडित, पाप-ताप विध्वंसनी।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥ ३॥

चंद्रार्चिचयछवि चारु चंचल, चमरवृंद सुहावने।
ढोलै निरन्तर यक्षनायक, कहत क्यों उपमा बनै।
यह नीलगिरि के शिखर मानों, मेघझरी लागी घनी।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥ ४॥

हीरा जवाहिर खचित बहुविधि, हेम आसन राजये।
तहँ जगत जनमनहरन प्रभु तन, नील वरन विराजये।
यह जटिल वारिज मध्य मानौं, नील-मणिकलिका बनी।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥ ५॥

जगजीत मोह महान जोधा, जगत में पटहा दियो।
सो शुकल ध्यान-कृपानबल जिन, निकट वैरी वश कियो।

ये बजत विजय निशान दुंदुभि, जीत सूचै प्रभु तनी।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥६॥

छद्मस्थ पद मैं प्रथम दर्शन, ज्ञान चरित आदरे।
अब तीन तेई छत्र छलसौं, करत छाया छवि भरे।
अति धवल रूप अनूप उन्नत, सोमबिंब प्रभा-हनी।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥७॥

दुति देखि जाकी चन्द सरमै, तेजसों रवि लाजई।
तव प्रभा-मण्डल जोग जग मै, कौन उपमा छाजई।
इत्यादि अतुल विभूति मण्डित, सोहिय त्रिभुवन धनी।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥८॥

या अगम महिमा सिंधु साहब, शक्र पार न पावहीं।
तजि हासमय तुम दास 'भूधर' भगतिवश यश गावहीं।
अब होउ भव-भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं।
कर जोरि यह वरदान मांगौं, मोखपद जावत लहौं।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥९॥

मैं पार्श्व प्रभु को नमन करता हूँ, जो इस जगत में अमृत रस के सार हैं। यह ही जन्म-जरारहित, अमरपद अर्थात् मोक्षपद प्राप्ति का मूल साधन है, इसलिए मैं उनको बलि जाता हूँ अर्थात् उनके प्रति समर्पित हूँ।

अशोक - ऊँचा अशोक वृक्ष, पवन के झकोरों के कारण झूमता हुआ सुशोभित हो रहा है मानो प्रभु का सामीप्य पाकर वह प्रमुदित हो रहा है। उसके फूलों के गुच्छों पर भ्रमर झूम रहे हैं और गुंजन कर रहे हैं, उनका गुंजन मानो कह रहा है कि ऐसे पापनाशक जगतश्रेष्ठ श्री पार्श्व जिनेन्द्र की जय हो, वे सदा जयवंत रहें।

पुष्प - कामदेव अपनी मृत्यु के भय से सारे जगत में शरण के लिए भागता फिरा, परन्तु वह प्रभु की दृष्टि में चोर था इसलिए उसे कहीं शरण नहीं मिली और अन्त में वह अपनी हार स्वीकार कर प्रभु के, आपके चरणों में आ गिरा

है। उसने अपने हथियार 'पुष्पशर' प्रभु के चरणों में डाल दिए। यह पुष्प-वृष्टि मानो उसी का प्रतीक है।

दिव्यध्वनि - प्रभु का नीलवर्ण गात ऊँचे पर्वत के समान है जिससे वाणीरूपी पवित्र नदी बह निकली है, जो दंतरूपी पर्वत-खंडों से निकल कर, अज्ञानरूपी हाथी का भेदन-नाश करती हुई ज्ञान के समुद्र में आकर समा जाती है। ऐसे सप्तभंगी तरंगों से शोभित वह वाणी पापरूपी तपन का नाश करनेवाली है।

चंवर - चंचल चन्द्र-समूह द्वारा वंदित आपकी सुंदर छवि पर चंवर, जिन्हें 64 यक्षगण निरंतर ढोर रहे हैं, अनुपम है अर्थात् उसकी कोई अन्य उपमा नहीं दी जा सकती, वे ऐसे सुहावने लग रहे हैं मानों नीले पर्वत के शिखर पर सघन मेघ की झरी-निर्झर प्रपातरूप में बह रही हो।

सिंहासन - सुवर्ण के रत्नजड़ित सिंहासन पर जगत-जन के मन को हरनेवाले प्रभु की नील (हरित)-वर्ण देह आसीन है, जो ऐसी सुशोभित हो रही है मानो घने दुरूह बादलों के बीच नीलमणि का एक भाग ही हो।

दुंदुभि - मोहरूपी महान योद्धा ने सारे जगत को अपने वश में कर लोक में अपनी विजय का डंका/नगाड़ा बजा रखा है, सो आपने अपनी शुक्ल ध्यानरूपी खड्ग (तलवार) से उस विकट व समीप रहनेवाले वैरी को सहज ही वश में कर लिया। इसी विजय की सूचना का प्रतीक यह दुंदुभि-वादन है।

तीन छत्र - छद्मस्थ अवस्था में ज्ञान और चारित्र के श्रेष्ठ साधन के फलस्वरूप जो केवलज्ञान होते ही तीन छत्र-छाया के प्रयोजन से प्रकट हुए हैं, वे श्वेत सुन्दर व चन्द्रमा की कांति को भी पराजित करनेवाले हैं।

प्रभामण्डल - सरोवर में पड़ रही आपकी परछाई के समक्ष चन्द्रमा की द्युति (कांति) और सूर्य का तेज भी फीका है, उस प्रभामण्डल के योग्य जगत में कोई अन्य उपमा ही नहीं है। इस प्रकार अनेक अपरिमित विभूतियों से त्रिभुवनधनी, आप सुशोभित हैं।

हे सागरतुल्य स्वामी! शक्र (इन्द्र) भी आपके गुणों का पार पाने में असमर्थ है। उपहास होने का भय छोड़कर आपका यह दास भक्तिवश आपका यशगान कर रहा है। मैं भूधरदास आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक आप भव-भव में मेरे स्वामी रहें और मैं आपका सेवक।

प्रस्तुत भजन में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अष्ट प्रातिहार्यों का वर्णन किया गया है।

तुम तरनतारन भवनिवारन, भविक-मनआनन्दनो।
श्रीनाभिनन्दन जगतवन्दन, आदिनाथ जिनिन्दनो॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पद पूजा करों।
कैलाशगिरिपर ऋषभ जिनवर, चरणकमल हृदय धरों॥ १॥

तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली।
यह जानकर तुम शरण आयो, कृपा कीजे नाथ जी॥
तुम चन्द्रवदन सुचन्द्रलक्षण, चन्द्रपुरिपरमेशजू।
महासेननन्दन जगतवंदन, अन्तनाथ जिनेशजू॥ २॥

तुम बालबोधविवेकसागर, भव्यकमलप्रकाशनो।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो॥
तुम तजी राजुल राजकन्या, कामसेन्या वश करी।
चारित्ररथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिवसुन्दरि वरी॥ ३॥

इन्द्रादि जन्मस्थान जिनके, करन कनकाचल चढ़े।
गंधर्व देवन सुयश गाये, अपसरा मंगल पढ़े॥
इहि विधि सुरासर निज नियोगी, सकल सेवाविधि ठही।
ते पार्श्व प्रभु मो आस पूरो, चरनसेवक हों सही॥ ४॥

तुम ज्ञान रवि अज्ञानतमहर, सेवकन सुख देत हो।
मम कुमतिहारन सुमतिकारन, दुरित सब हर लेत हो॥
तुम मोक्षदाता कर्मघाता, दीन जानि दया करो।
सिद्धार्थनन्दन जगतवन्दन, महावीर जिनेश्वरो॥ ५॥

चौबीस तीर्थंकर सुजिनको, नमत सुरनर आयके।
मैं शरण आयो हर्ष पायो, जोर कर सिर नायके॥
तुम तरनतारन हो प्रभूजी, मोहि पार उतारियो।
मैं हीन दीन दयालु प्रभुजी, काज मेरो सारियो॥ ६॥

यह अतुलमहिमा सिन्धु साहब, शक्र पार न पावही।
तजि हासभय तुम दास 'भूधर', भक्तिवश यश गावही॥७॥

हे जगतवंद्य जिनेन्द्र! श्री नाभिराय के सुपुत्र श्री आदिनाथ भगवान! आप भवसागर से पार उतारनेवाले, भव-भ्रमण को मिटानेवाले, भव्यजनों के मन को आनंदित करनेवाले हो। हे आदिनाथ! आपकी सदैव वन्दना करूँ, आपके चरण-कमलों की पूजा करूँ। कैलाशगिरि पर ऋषभजिनेन्द्र के स्थापित चरण-कमल को मैं अपने हृदयासन पर आसीन करूँ।

हे अजितनाथ! जो जीते न जा सकें ऐसे महाबलशाली आठ कर्मों को आपने जीत लिया - यह जानकर मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे स्वामी मुझ पर कृपा कीजिए।

हे चन्द्रप्रभ! चन्द्रमा के समान शोभित, चन्द्रमा शुभ लांछन है जिनके ऐसे चन्द्रपुरी के नरेश महासेन के सुपुत्र चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! आप जगत के द्वारा वंदनीय हैं।

हे नेमिनाथ! आप पापरूपी अंधकार का नाश करने के लिए पवित्र सूर्य हैं, आप अज्ञानियों को बोध कराने के लिए विवेक के सागर हैं और भव्यजनरूपी कमलदल के प्रकाशक हैं। आपने राजकुमारी राजुल (से विवाह) को छोड़कर, कामदेव की सेना को अपने वश में कर लिया और चारित्ररूपी रथ पर चढ़कर दूल्हा बन मोक्षरूपी सुन्दरी का वरण किया।

हे भगवान पार्श्वनाथ! इन्द्रादि देव जिनेन्द्र के जन्म स्थान से जन्मोत्सव मनाने हेतु सुवर्ण के समान शोभित कनकाचल (सुमेरु पर्वत) पर चढ़े, गंधर्व देवों ने यश-गान किया और अप्सराओं ने मंगल-गान किया। इस प्रकार सुर-असुर सभी ने मिलकर नियोगवश अपने-अपने योग्य कार्य संपन्न किये। हे पार्श्वनाथ! मैं तो आपका चरण-सेवक हूँ, मेरी आशा पूरी करो।

हे जगतवंद्य सिद्धार्थसुत श्रीमहावीर जिनेश्वर! आप अज्ञानरूपी अंधकार को नाश करनेवाले ज्ञानरूपी सूर्य हो, सेवकों को सुख देनेवाले हो, मेरी दुर्मति का

नाश करनेवाले हो और सुमति के आधार हो, मुझे दीन जानकर ही मुझ पर दया करो।

हे चौबीसों जिनेश! आपको मनुष्य, देव आदि सभी आकर शीश झुकाते हैं। मैं भी आपकी शरण में आया हूँ। हाथ जोड़कर शीश नमाता हूँ। तुम तारनेवाले हो, मुझे भी इस भवसागर से पार उतारो। मैं शक्तिहीन हूँ, निर्धन हूँ, दीन हूँ; आप दयालु हैं, मेरे सर्व कार्य सिद्ध कीजिए।

हे प्रभुवर! आप अतुल महिमा-सागर हैं, महिमाधारी हैं। आपकी महिमा-गुणावली का पार इन्द्र भी नहीं पा सकते, तब मेरी सामर्थ्य कहाँ! भूधरदास कहते हैं, मैं लोक-हास्य का भय तजकर, भक्तिवश ही आपका यशगान करने को प्रेरित हुआ हूँ।

(२६)

राग काफी

सीमंधर स्वामी, मैं चरनन का चेरा॥ टेक॥
इस संसार असार में कोई, और न रक्षक मेरा॥ सीमंधर॥

लख चौरासी जोनिमें मैं, फिरि फिरि कीनौं फेरा।
तुम महिमा जानी नहीं प्रभु, देख्या दुःख घनेरा॥ १॥ सीमंधर॥

भाग उदयतैं पाइया अब, कीजे नाथ निवेरा।
बेगि दया करि दीजिए मुझे, अविचल थान-बसेरा॥ २॥ सीमंधर॥

नाम लिये अघ ना रहै ज्यों, ऊगें भान अंधेरा।
'भूधर' चिन्ता क्या रही ऐसी, समरथ साहिब तेरा॥ ३॥ सीमंधर॥

हे सीमंधर स्वामी! मैं आपके चरणों का दास हूँ, सेवक हूँ, भक्त हूँ। इस नश्वर, सारहीन संसार में मेरी रक्षा करनेवाला/रक्षक और कोई भी नहीं है। चौरासी लाख योनियों में बार-बार जन्म लेकर फिरता रहा हूँ पर आपकी महिमा को/आपके गुणों को नहीं जाना, इस कारण तीव्र दुःखों को भोगना पड़ा है। अब मेरा भाग्योदय हुआ है कि आपके प्रति भक्ति जागृत हुई है। हे नाथ! अब मेरा निबटारा कर दीजिए। शीघ्र ही कृपाकर अविचल स्थान सिद्ध-शिला पर मुझे अक्षय निवास प्रदान कीजिए। जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार मिट जाता है, उसी प्रकार आपका नाम स्मरण करने से पाप नहीं ठहरते, वे नष्ट हो जाते हैं। भूधरदास कहते हैं कि जिसके स्वामी की ऐसी सामर्थ्य है उसको फिर कौनसी चिन्ता शेष रह सकती है अर्थात् नहीं रह सकती!

(२७)

राग सोरठ

वा पुरके वारणैं जाऊं ॥ टेक ॥

जम्बूद्वीप विदेहमें, पूरव दिशि सोहै हो।
पुंडरीकिनी नाम है, नर सुर मन मोहै हो ॥ १ ॥ वा पुर. ॥

सीमंधर शिवके धनी, जहं आप विराजै हो।
बारह गण बिच पीठपै, शोभानिधि छाजे हो ॥ २ ॥ वा पुर. ॥

तीन छत्र माथैं दिपैं, वर चामर वीजै हो।
कोटिक रतिपति रूपपै, न्यौछावर कीजै हो ॥ ३ ॥ वा पुर. ॥

निरखत विरख अशोकको, शोकावलि भाजै हो।
वाणी वरसै अमृत सी, जलधर ज्यों गाजै हो ॥ ४ ॥ वा पुर. ॥

बरसैं सुमन सुहावने, सुर दुन्दभि गाजै हो।
प्रभु तन तेज समूहसौं, शशि सूरज लाजै हो ॥ ५ ॥ वा पुर. ॥

समोसरन विधि वरनतैं, बुधि वरन न पावै हो।
सब लोकोत्तर लच्छमी, देखैं बनि आवै हो ॥ ६ ॥ वा पुर. ॥

सुरनर मिलि आवैं सदा, सेवा अनुरागी हो।
प्रकट निहारैं नाथकों, धनि वे बड़भागी हो ॥ ७ ॥ वा पुर. ॥

'भूधर' विधिसौं भावसौं, दीनी त्रय फेरी हो।
जैवंती वरतो सदा, नगरी जिन केरी हो ॥ ८ ॥ वा पुर. ॥

(मेरी इच्छा है कि) मैं उस नगरी के द्वार पर जाऊँ जो जंबू द्वीप के विदेह क्षेत्र में पूर्व दिशा की ओर, मनुष्य और देवों के मन को मोहनेवाली पुंडरीकनी नगरी के नाम से सुशोभित हो रही है। जहाँ बारह गणधरों के बीच उच्च आसन

पर समस्त शोभासहित, मुक्तिवधू के कंत सीमंधर भगवान आसीन हैं। उनके मस्तक (शिर) पर तीन छत्र चमक रहे हैं, श्रेष्ठ चँवर ढुराए जा रहे हैं, उस सुन्दर छवि पर करोड़ों कामदेव न्यौछावर हैं। (वहाँ स्थित) अशोक वृक्ष को देखते ही सब शोक दूर हो जाते हैं, बादलों की गरज-सी दिव्य-ध्वनि से अमृत-वचन झर रहे हैं। जहाँ सुन्दर सुगन्धित फूलों की वृष्टि हो रही है, दुंदुभिनाद से गुंजित उस वातावरण में सूर्य की प्रखरता व चन्द्रकांति को लजानेवाला प्रभु का अत्यन्त तेजयुत दिव्य-गात (शरीर) सुशोभित है।

उस समवशरण की निराली छटा व व्यवस्था का वर्णन यह बुद्धि नहीं कर पाती क्योंकि सब ही दैविक (अलौकिक) लक्षण हैं जो देखते ही बनते हैं। देव और मनुष्य सब मिलकर उनकी पूजा हेतु सदा आते हैं और उनको भक्तिपूर्वक निहारते हैं। वे लोग धन्य हैं, बड़े भाग्यशाली हैं। भूधरदास कहते हैं कि मैं उस नगरी को भाव-प्रदक्षिणा देता हूँ। वह जिनेन्द्र की नगरी (समवसरण) सदा जयवंत हो।

बारणैं = द्वार पर। माथैं = मस्तक पर। रतिपति = कामदेव। विरख = वृक्ष।

(२८)

राग ख्याल

थांकी कथनी म्हानै प्यारी लगै जी, प्यारी लगै म्हारी भूल भगै जी॥
तुमहित हांक बिना हो श्रीगुरु, सूतो जियरो कांई जगै जी॥

मोहनिधूलि मेलि म्हारे माथै, तीन रतन म्हारा मोह ठगै जी।
तुम पद ढोकत सीस झरी रज, अब ठगको कर नाहिं वगै जी॥ १॥

टूट्यो चिर मिथ्यात महाज्वर, भागां मिल गया वैद मगै जी।
अन्तर अरुचि मिटी मम आतम, अब अपने निजदर्व पगै जी॥ २॥

भव वन भ्रमत बढ़ी तिसना तिस, क्योंहि बुझै नहिं हियरा दगै जी।
'भूधर' गुरुउपदेशामृतरस, शान्तमई आनंद उमगै जी॥ ३॥

हे भगवन! आपकी दिव्य-ध्वनि हमको प्रिय लगती है। वह इसलिए प्रिय भी लगती है कि उसको सुनकर हमारी भूल दूर हो जाती है। तुम्हारे सचेत करनेवाले संबोधन के बिना हे भगवन! मेरा यह सुप्त ज्ञान कैसे जागृत हो?

मेरे मस्तक पर मोह की धूलि (भस्म) डालकर यह मोहनीय कर्म मेरे रत्नत्रय की हानि करता है। जैसे ही आपके चरणों में नमन करने हेतु शीश झुका कि वह धूल झड़कर नीचे गिर जाती है और फिर ठग द्वारा लूटने की कोई क्रिया कारगर नहीं हो पाती अथवा अब ठग का हाथ मुझे पकड़ नहीं पाता। भाग्य से मुझे राह में ही ऐसे चिकित्सक से भेंट हो गई है, जिसके कारण मेरा चिरकाल से चला आ रहा मिथ्यात्व (दृष्टि दोष) का ज्वर मिट गया है। अपने आत्मा की ओर बरती जा रही उपेक्षा, अरुचि अब मिट गई है और अपने निज आत्मद्रव्य में तल्लीनता, एकाग्रता होने लगी है।

भूधरदास कहते हैं कि इस भव-वन में भटकते हुए हृदय तृष्णा (प्यास) से शुष्क हो रहा है वह तृष्णा (प्यास) गुरु-उपदेशरूपी अमृतरस से शान्ति और आनन्द की वृद्धि होने पर शान्त हो जाती है, मिट जाती है।

वगै (वगणो) = पकड़ना, लूटना।

(२९)

राग विराग

अरे मन चल रे, श्रीहथनापुर की जात॥ टेक॥

रामा-रामा धन-धन करते, जावै जनम विफल रे॥ १॥ अरे.॥

करि तीरथ जप तप जिनपूजा, लालच बैरी दल रे॥ २॥ अरे.॥

'शांति-कुंथु-अर' तीनों जिनका, चारु कल्याणकथल रे॥ ३॥ अरे.॥

जा दरसत परसत सुख उपजत, जाहिं सकल अघ गल रे॥ ४॥ अरे.॥

देश दिशन्तरके जन आवैं, गावैं जिन गुन रल रे॥ ५॥ अरे.॥

तीरथ गमन सहामी मेला, एक पंथ द्वै फल रे॥ ६॥ अरे.॥

कायाके संग काल फिरै है, तन छायाके छल रे॥ ७॥ अरे.॥

माया मोह जाल बंधनसौं, 'भूधर' वेगि निकल रे॥ ८॥ अरे.॥

अरे मन! तू हस्तिनापुर की यात्रा के लिए चल। स्त्री और धन की कामना करते-करते यह सारा जनम विफल हो रहा है। तू तीर्थयात्रा, जप-तप व जिनपूजा कर। तृष्णा और लालच बैरी हैं। यह हस्तिनापुर शांतिनाथ, कुंथनाथ और अरहनाथ इन तीनों तीर्थंकरों का कल्याणक स्थान है। उस भूमि के दर्शन से, उस भूमि के स्पर्श से ही चित्त में आनन्द होता है, सुख उपजता है और सारे पापों का क्षय होता है। दूर-दूर से, देश-देशान्तर से लोग वहाँ आते हैं और सब मिलकर जिनेन्द्र का गुणगान करते हैं। तीर्थयात्रा और मेले का सुअवसर 'एक पंथ दो काज' होते हैं। मृत्यु सदैव इस काया के साथ (लगी) रहती है और छाया के समान क्षणिक तन/देह को छलती है। भूधरदास कहते हैं कि माया, मोह के बंधन के जाल से तू जल्दी ही बाहर निकल।

जात = यात्रा। रामा = स्त्री।

(३०)

मेरे चारौं शरन सहाई॥ टेक॥
जैसे जलधि परत वायसकौं, बोहिथ एक उपाई॥ मेरे.॥

प्रथम शरन अरहन्त चरनकी, सुरनर पूजत पाई।
दुतिय शरन श्रीसिद्धनकेरी, लोक-तिलक-पुर राई॥ १॥ मेरे.॥

तीजे सरन सर्व साधुनिकी, नगन दिगम्बर-काई।
चौथे धर्म, अहिंसा रूपी, सुरग मुकति सुखदाई॥ २॥ मेरे.॥

दुरगति परत सुजन परिजनपै, जीव न राख्यो जाई।
'भूधर' सत्य भरोसो इनको, ये ही लेहिं बचाई॥ ३॥ मेरे.॥

(जगत में) ये चार ही मेरे सहायक हैं, उपकारी हैं, मुझे इनकी ही शरण है। जैसे समुद्र के मध्य उड़ते हुए पक्षी के लिए जहाज के अतिरिक्त कोई आश्रय नहीं होता, वैसे ही इस संसार-समुद्र में इन चारों के अतिरिक्त मेरा अन्य कोई सहायक नहीं है जिनकी मैं शरण जा सकूँ। पहली शरण मुझे अरहंत के चरणों में है, जिनकी पूजा देव व मनुष्य करते हैं। दूसरी शरण मुझे सिद्ध प्रभु की है, जो लोक के उन्नत भाल पर अर्थात् लोकाग्र में तिलक के समान स्थित सिद्ध-शिला पर राजा की भाँति आसीन हैं। तीसरी शरण मुझे उन सर्व साधुजनों की है, जो नग्न-दिगम्बररूप में सुशोभित हैं। चौथी शरण मुझे उस अहिंसा-धर्म की है जो स्वर्ग व मुक्ति के सुख का दाता है। दुर्गति/कष्ट आ पड़ने पर स्वजन-परिजन कोई भी जीव को नहीं रखता। उस समय ये चारों ही उसके लिए शरण होते हैं। भूधरदास कहते हैं कि सचमुच ऐसे क्षणों में मुझे इन्हीं चारों का भरोसा है। ये ही मुझे इस भवसागर से बचाने में समर्थ हैं।

वायस = कौवा। बोहिथ (बोहित्थ) - जहाज। लोकतिलकपुर = सिद्धशिला।

(३१)

राग सारङ्ग

भवि देखि छबी भगवान की ॥ टेक ॥
सुन्दर सहज सोम आनन्दमय, दाता परम कल्यानकी ॥ भवि. ॥

नासादृष्टि मुदित मुखवारिज, सीमा सब उपमान की।
अंग अडोल अचल आसन दिढ़, वही दशा निज ध्यान की ॥ १ ॥ भवि. ॥

इस जोगासन जोगरीतिसौं, सिद्ध भई शिवथानकी।
ऐसें प्रगट दिखावै मारग, मुद्रा धात पखान की ॥ २ ॥ भवि. ॥

जिस देखें देखन अभिलाषा, रहत न रंचक आनकी।
तृपत होत 'भूधर' जो अब ये, अंजुलि अमृतपानकी ॥ ३ ॥ भवि. ॥

ओह! (आज) भगवान की भव्य छवि के दर्शन किए जो सुन्दर है, सहज है, सौम्य व आनन्दमय है तथा जो परम कल्याण की दाता (देनेवाली) है। भगवान की वह छवि प्रसन्न मुद्रायुक्त है, मुखकमल प्रफुल्लित है, नासा-दृष्टि है, वह सब उपमानों से अधिक श्रेष्ठ है, उपमानों की चरम स्थिति है। वह छवि अडोल, स्थिर, अचल व दृढ़ आसन है यह ही तो निज-मग्न होने की स्थिति होती है। इसी प्रकार के आसन से, योग-पद्धति से मोक्ष की उपलब्धि होती है। धातु और पाषाण की मूर्तियाँ उस मुद्रा को/उस मार्ग को प्रत्यक्ष बता रही हैं, दिखा रही हैं जिसको देखने के पश्चात् किसी अन्य को देखने की अभिलाषा शेष नहीं रहती। भूधरदास कहते हैं कि ऐसे अमृत की अंजुलिपान करने से अर्थात् दर्शन करने से परम तृप्ति का अनुभव होता है।

(३२)

राग नट

जिनराज चरन मन मति बिसरै॥ टेक॥
को जानैं किहिंवार कालकी, धार अचानक आनि परै॥

देखत दुख भजि जाहिं दशौं दिश पूजन पातकपुंज गिरै।
इस संसार छारसागरसौं, और न कोई पार करै॥ १॥

इक चित ध्यावत वांछित पावत, आवत मंगल विघन टरै।
मोहनि धूलि परी मांथे चिर, सिर नावत ततकाल झरै॥ २॥

तबलौं भजन संवार सयानैं, जबलौं कफ नहिं कंठ अरै।
अगनि प्रवेश भयो घर 'भूधर', खोदत कूप न काज सरै॥ ३॥

हे भव्य प्राणी! जिनराज के चरणों को कभी (थोड़ी देर के लिए भी) मत भूलो। कौन जानता है कि किस समय काल का अचानक आक्रमण हो जाय! इन चरणों को देखते ही, इनका दर्शन-स्मरण पाते ही चहुँ ओर से घेर रहे दुःख दूर हो जाते हैं, पूजा करने से पाप-समूह समाप्त हो जाता है। यह संसार एक खारे समुद्र की भाँति है। जिनराज के चरणों के अलावा कोई भी (खारे सागर-रूपी) संसार से पार कराने में समर्थ नहीं है।

इन चरणों का ध्यान करते ही मनोवांछाएँ पूर्ण होती हैं और विघ्नों का नाश होकर मंगल का प्रादुर्भाव होता है। सिर पर सदा से जो मोह की धूल पड़ी है वह भी आपको शीश झुकाते ही, आपकी शरण में आते ही तत्काल झड़कर नीचे गिर जाती है। भूधरदास कहते हैं कि घर में आग लगने पर कुआँ खोदने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, इसलिए हे सयाने! जब तक तेरे कंठ कफ के कारण अवरुद्ध नहीं हों, अर्थात् वृद्धावस्था आने पर बोलने में असमर्थ होवे उससे पहले तू इनके (जिनराज के) भजन गाकर अपने जीवन का श्रेष्ठ उपयोग कर।

(३३)

राग पंचम

जिनराज ना बिसारो, मति जन्म वादि हारो।
नर भौ आसान नाहिं, देखो सोच समझ वारो॥ जिनराज.॥

सुत मात तात तरुनी, इनसौं ममत निवारो।
सबहीं सगे गरजके, दुखसौर नाहिं निहारो॥ १॥ जिनराज.॥

जे खायं लाभ सब मिलि, दुर्गतमैं तुम सिधारो।
नट का कुटंब जैसा यह खेल यों विचारो॥ २॥ जिनराज.॥

नाहक पराये काजै, आपा नरकमैं पारो।
'भूधर' न भूल जगमैं, जाहिर दगा है थारो॥ ३॥ जिनराज.॥

हे जीव! श्री जिनराज को कभी न भूलो। अपने जनम को वृथा/निरर्थक न करो। यह नरभव आसान नहीं है, इसका विवेकपूर्वक उपयोग करो। पुत्र, माता, पिता, स्त्री इनसे ममत्व छोड़ो। ये सब अपने स्वार्थ के साथी हैं। आपके दु:ख व पीड़ा में ये साथी नहीं होते, सहयोगी भी नहीं होते। लाभ के समय सब मिल जाते हैं और दुर्गति में, दु:ख में तुम अकेले होते हो। यह कुटुंब नट का-सा खेल है। इस तथ्य पर तनिक विचार करो। व्यर्थ ही दूसरों के कार्यवश स्वयं को नरकगति में डालते हो। भूधरदास कहते हैं कि यह जगत सरासर/प्रत्यक्षत: एक धोखा है, इस सत्य को तनिक भी मत भूलो।

वादि = व्यर्थ।

(३४)

हरिगीतिका

पुलकन्त नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इन्दीवरो।
दुर्बुद्धि चकवी बिलख बिछुरी, निविड़ मिथ्यातम हरो॥
आनन्द अम्बुज उमगि उछर्‌यो, अखिल आतम निरदले।
जिनवदन पूरनचन्द्र निरखत, सकल मनवांछित फले॥ १॥

मुझ आज आतम भयो पावन, आज विघ्न विनाशियो।
संसारसागर नीर निखट्यो, अखिल तत्त्व प्रकाशियो॥
अब भई कमला किंकरी मुझ, उभय भव निर्मल ठये।
दुःख जरो दुर्गति वास निवरो, आज नव मंगल भये॥ २॥

मनहरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये।
मम सकल तनके रोम हुलसे, हर्ष और न पाइये॥
कल्याणकाल प्रतच्छ प्रभुको, लखें जो सुर नर घने।
तिस समयकी आनन्दमहिमा, कहत क्यों मुखसों बने॥ ३॥

भर नयन निरखे नाथ तुमको, और बांछा ना रही।
मन ठठ मनोरथ भये पूरन, रंक मानो निधि लही॥
अब होय, भव-भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये।
कर जोर 'भूधरदास' बिनवै, यही वर मोहि दीजिये॥ ४॥

चन्द्रमा को देखकर जैसे चकोर पक्षी के नेत्र आनन्द से पुलकित हो उठते हैं, उसीप्रकार जिनेन्द्ररूपी पूर्णचन्द्र को निरखकर सर्वांग आत्मा से प्रस्फुटित आनन्दरूपी कमल खिल उठा है। जैसे चकवे से दुर्बुद्धिरूपी चकवी अलग हो जाती है, बिछुड़ जाती है, वैसे ही मानो मेरा मिथ्यात्वरूपी गहन अंधकार दूर हो गया है। अब मेरे सब मन-वांछित पूर्ण होंगे।

मेरी आत्मा आज पवित्र हो गयी है, मेरे सब विघ्नों का विनाश हो गया है। तत्वों के ज्ञान की अनुभूति होने के कारण संसाररूपी समुद्र का जल चुक गया

है, सूख गया है। दासी हो गई है और मन और अन्तर्मन निर्मल हुए। दुःख जल गये हैं, नष्ट हो गये हैं और दुर्गति में रहने का अन्त आ गया है। आज नये मंगल हो रहे हैं।

प्रभु की मनोहारी, निरुपम प्रतिमा के दर्शन पाकर रोम-रोम हुलसित हो गया है, मेरे आनन्द का कोई पार नहीं है। जिन मनुष्यों व देवों को प्रभु का कल्याणक प्रत्यक्ष में देखने का सौभाग्य मिला है उनके उस आनन्द का कोई वर्णन नहीं कर सकता। हे नाथ! आपके जी भरकर, नैन भरकर दर्शन करने से अब मेरे मन में कोई वांछा शेष नहीं रही। मन के सभी मनोरथ पूर्ण हो गए। मानो दरिद्र को लक्ष्मी की प्राप्ति हो गई हो।

भूधरदास हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे भगवन! मुझे आपकी भक्ति करने का सुयोग जन्म-जन्मातर में (मोक्ष की प्राप्ति तक) मिलता ही रहे। यह ही वर मुझे प्रदान कीजिए।

(३५)

राग ख्याल

नैननि को बान परी, दरसन की ॥ टेक ॥
जिन मुखचन्द चकोर चित मुझ, ऐसी प्रीति करी ॥ नैन. ॥

और अदेखन के चितवनको अब चित चाह टरी।
ज्यों सब धूलि दबै दिशि दिशिकी, लागत मेघझरी ॥ १ ॥ नैन. ॥

छबि समाय रही लोचनमें, विसरत नाहिं घरी।
'भूधर' कह यह टेव रहो थिर, जनम जनम हमरी ॥ २ ॥ नैन. ॥

हे प्रभु! इन नयनों को आपके दर्शन करने की आदत पड़ गई है। जैसे चकोर पक्षी चन्द्रमा को देखकर आह्लादित होता है, उसी प्रकार मेरा चित्त आपके दर्शन पाकर मग्न हो जाता है, आपसे ऐसी प्रीति, ऐसा लगाव हो गया है।

चित्त में अब अन्य देवों को देखने की, उनके दर्शन की कोई चाह नहीं रह गई है। वह चाह वैसे ही मिट गई, जैसे - चारों ओर उड़ रहे धूल के कण वर्षा होने पर भीगकर दब जाते हैं, नीचे आ जाते हैं।

मेरे नयनों में आपकी ही मुद्रा समा रही है, भा रही है, एक क्षण के लिए भी उसे भुलाया नहीं जाता। भूधरदास कहते हैं कि हमारी यह आदत जन्म-जन्म तक ऐसी ही स्थिर अर्थात् स्थायी बनी रहे, यही भावना है।

(३६)

राग ख्याल बरवा

म्हें तो थाकी आज महिमा जानी, अब लों नहिं उर आनी ॥ टेक ॥
काहे को भव धारें भ्रमतो, क्यों होतो दुखदानी ॥ १ ॥ म्हें तो. ॥
नाम-प्रताप तिरे अंजनसे, कीचकसे अभिमानी ॥ २ ॥ म्हें तो. ॥
ऐसी साख बहुत सुनियत है, जैनपुराण बखानी ॥ ३ ॥ म्हें तो. ॥
'भूधर' को सेवा वर दीजै, मैं जाचक तुम दानी ॥ ४ ॥ म्हें तो. ॥

हे भगवन! हमने आज आपकी महिमा (विशेषता, विरुदावली) जानी, अब तक ये बात (महिमा) हमारे हृदय में नहीं आई थी। यदि आपकी महिमा/विशेषता/गुणों को पहले जान लेते तो हम क्यों अब तक भव-भ्रमण करते? क्यों संसार में रुलते और क्यों दु:खी होते? आपके नाम-स्मरण से अंजन चोर व कीचक जैसे अभिमानी भी तिर गए। आपकी ऐसी साख जैन पुराणों में बहुत वर्णित है, बहुत कही गई है, वह हमने भी बहुत सुनी है। भूधरदास कहते हैं कि मैं याचक हूँ और आप हैं दानी अत: मुझको आपकी सेवा करने का वर/अवसर दीजिए।

(३७)

राग काफी

प्रभु गुन गाय रै, यह औसर फेर न पाय रे॥ टेक॥

मानुष भव जोग दुहेला, दुर्लभ सतसंगति मेला।
सब बात भली बन आई, अरहन्त भजौ रे भाई॥ १॥ प्रभु.॥

पहले चित-चीर संभारो कामादिक मैल उतारो।
फिर प्रीति फिटकरी दीजे, तब सुमरन रंग रंगीजे॥ २॥ प्रभु.॥

धन जोर भरा जो कूवा, परवार बढ़े क्या हूवा।
हाथी चढ़ि क्या कर लीया, प्रभु नाम बिना धिक जीया॥ ३॥ प्रभु.॥

यह शिक्षा है व्यवहारी, निहचैकी साधनहारी।
'भूधर' पैडी पग धरिये, तब चढ़नेको चित करिये॥ ४॥ प्रभु.॥

हे मनुष्य! प्रभु के गुण गाओ। मनुष्य भव का यह जो अवसर मिला है यह फिर नही मिलेगा। इस मनुष्य भव का मिलना बड़ा दुर्लभ योग है और फिर इसमें सत्संगति का मेल होना तो और भी दुर्लभ है। तुम्हें मनुष्य भव मिला, उत्तम संयोग व सत्संगति मिली, ये सब बातें अच्छी बन गई। अब तुम अरहंत के गुणों का चिंतवन करो, अरहंत का भजन करो।

हे भाई! सबसे पहले अपने चित्तरूपी कपड़े को संभारो, वश में करो; उस पर कामादिक विषयों के जो रंग चढ़ रहे हैं, विषयों की रुचि हो रही है, उसे दूर करो फिर श्रद्धा-भक्तिरूपी फिटकरी से समस्त मैल हटाकर (चित्तरूपी कपड़े को) स्वच्छकर अरहंत के गुण-स्मरण के रंग से रंग दो, भिगो दो।

यदि धन से कुआँ भर गया, परिवार की वृद्धि हो गई, तो उससे क्या प्राप्ति हुई? प्रतिष्ठा मिली, हाथी पर चढ़ लिया तो क्या कर लिया? प्रभु का स्मरण नही किया, उनका गुण-चिंतवन नहीं किया तो जीवन ही धिक्कार है, हेय है।

यह व्यावहारिक उपदेश है परन्तु निश्चय धर्म की साधना में सहायक है। भूधरदास कहते हैं कि निश्चय धर्म की ओर चढ़ने को जी करे तो इस पैड़ी पर पग धरिए अर्थात् इस व्यवहार का, प्रभु-गुणगान का पालन कीजिए।

(३८)

राग धनासारी

शेष सुरेश नरेश रटें तोहि, पार न कोई पाव जू॥ टेक॥

काटै नपत व्योम विलसतसौ, को तारे गिन लावै जू॥ १॥ शेष.॥

कौन सुजान मेघबूंदन की, संख्या समुझि सुनावै जू॥ २॥ शेष.॥

'भूधर' सुजस गीत संपूरन, गनपति भी नहि गावै जू॥ ३॥ शेष.॥

हे भगवन! सुर, नर, नाग अर्थात् देव, मनुष्य आदि सभी तेरा नाम रटते हैं, पर तेरे गुणों का कोई भी पार नहीं पा सकता। जो आकाशगामी होकर गगन को पार करते हैं, व्योम में स्वच्छन्द विचरण करते हैं वे आकाशगामी भी क्या समस्त तारागण की गिनती कर सकते हैं? कोई भी सत्पुरुष क्या बरसते मेघ की बूँदों की गिनती कर सकते हैं?

भूधरदास कहते हैं कि स्वयं गणधर गणपति भी आपके सुयश का सम्पूर्ण गुणगान कर सकने में असमर्थ हैं।

(३९)

राग सोरठ

स्वामीजी सांची सरन तुम्हारी ॥ टेक ॥
समरथ शांत सकल गुनपूरे, भयो भरोसो भारी ॥ स्वामी. ॥

जनम-जरा जग बैरी जीते, टेव मरनकी टारी।
हमहूकों अजरामर करियो, भरियो आस हमारी ॥ १ ॥ स्वामी. ॥

जनमैं मरैं धरैं तन फिरि-फिरि, सो साहिब संसारी।
'भूधर' पर दालिद क्यों दलि है, जो है आप भिखारी ॥ २ ॥ स्वामी. ॥

हे प्रभु, हे स्वामी! तुम्हारी ही शरण सत्य है। आप समर्थ हैं, शांत हैं, सर्वगुणसंपन्न हैं, हमें आप पर पूर्ण भरोसा है। आपका ही आधार है। आपने जन्म और बुढ़ापा जो सारे जगत के बैरी हैं, उनको जीत लिया है और मृत्यु की परम्परा को भी हमेशा के लिए छोड़ दिया है, अर्थात् मृत्यु से भी मुक्त हो गए हैं। हमें भी आपकी भांति अजर (जो कभी रोग-ग्रस्त न हो, वृद्ध न हो)-अमर (जिसका कभी मरण न हो) स्थिति दो, अजर-अमर स्थान दो, आपसे हमारी यही एक आशा है, इसे पूर्ण कीजिए।

भूधरदासजी कहते हैं कि जो संसार में जन्म-मरण धारणकर बार-बार आवागमन करते हैं ऐसे देव संसारी हैं। वे स्वयं याचक हैं, पराधीन हैं, वे मेरी (भूधरदास की) दरिद्रता का नाश कैसे करेंगे!

दलि = नाश करना।

(४०)

राग धमाल

देखे देखे जगतके देव, राग-रिससौं भरे॥
काहूके संग कामिनि कोऊ, आयुधवान खरे॥ देखे.॥

अपने औगुन आपही हो, प्रकट करैं उघरे।
तऊ अबूझ न बूझहिं देखो, जन मृग भोर परे॥ १॥ देखे.॥

आप भिखारी ह्वै किनहीं हो, काके दलिद हरे।
चढ़ि पाथरकी नावपै कोई, सुनिये नाहिं तरे॥ २॥ देखे.॥

गुन अनन्त जा देवमें औ, ठारह दोष टरे।
'भूधर' ता प्रति भावसौं दोऊ, कर निज सीस धरे॥ ३॥ देखे.॥

मैंने जगत के अनेक देव देखे हैं जो राग-द्वेषसहित हैं, किसी के साथ स्त्री है तो कोई शास्त्र धारण किए हुए है। उनके दुर्गुण अपने आप ही प्रकट व प्रकाशित हैं, स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं, वे अबूझ हैं अर्थात् पूछने योग्य नहीं, ये बातें तो सर्वविदित हैं। मृग-समान भोले प्राणी, भोलेपन के कारण उनके चक्कर में पड़ जाते हैं पर भोर होते ही, ज्ञान होते ही सब प्रकट हो जाता है, दिखाई दे जाता है।

जो स्वयं याचक है, दूसरों से माँगते हैं वे दूसरों के/किसी दरिद्र के दुःख को कैसे दूर कर सकते हैं? पत्थर की नाव पर बैठकर कोई तैर सका है - यह आज तक नहीं सुना। जिस देव में अनन्त गुण हैं और जो अठारह दोषरहित हैं भूधरदास उन्हें भावसहित हाथ जोड़कर शिरोनति करते हैं, उन्हें मस्तक पर धारण करते हैं।

(४१)

करुणाष्टक

करुणा ल्यो जिनराज हमारी, करुणा ल्यो ॥ टेक ॥

अहो जगतगुरु जगपती, परमानंदनिधान।
किंकर पर कीजे दया, दीजे अविचल थान ॥ १ ॥ हमारी. ॥

भवदुखसों भयभीत हौं, शिवपदवांछा सार।
करो दया मुझ दीनपै, भवबंधन निरवार ॥ २ ॥ हमारी. ॥

पर्‌यो विषम भवकूपमें, हे प्रभु! काढ़ो मोहि।
पतितउधारण हो तुम्हीं, फिर-फिर विनऊं तोहि ॥ ३ ॥ हमारी. ॥

तुम प्रभु परमदयाल हो, अशरण के आधार।
मोहि दुष्ट दुख देत हैं, तुमसों करहुं पुकार ॥ ४ ॥ हमारी. ॥

दुःखित देखि दया करै, गाँवपती इक होय।
तुम त्रिभुवनपति कर्मतैं, क्यों न छुड़ावो मोय ॥ ५ ॥ हमारी. ॥

भव-आताप तबै भुजैं, जब राखो उर धोय।
दया-सुधा करि सीयरा, तुम पदपंकज दोय ॥ ६ ॥ हमारी. ॥

येहि एक मुझ वीनती, स्वामी! हर संसार।
बहुत धन्यो हूँ त्रासतैं, विलख्यो बारंबार ॥ ७ ॥ हमारी. ॥

पदमनंदिको अर्थ लैं, अरज करी हितकाज।
शरणागत 'भूधर'-तणी, राखौ जगपति लाज ॥ ८ ॥ हमारी. ॥

हे प्रभु! हमारी ओर करुणा लीजिए अर्थात् हम पर करुणा कीजिए। मेरी आकुलता का निवारण हो, आप जगत्पति हैं, जगत के परम गुरु हैं, परम आनंद के आधार हैं। मुझ दास पर कृपाकर मुझे मोक्ष में स्थिति दीजिए। संसार के

दु:खों से भयभीत हूँ, इससे मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न हुई है। मुझ दुखिया पर दया करके मुझे संसार के बंधन से मुक्त कीजिए। मैं इस संसार के कठिन व गहरे कूप में पड़ा हुआ हूँ, मुझे बाहर निकालो। आप ही पापियों का उद्धार करनेवाले हैं, इसलिए मैं बार-बार आपकी स्तुति करता हूँ, आपका स्मरण करता हूँ। आप परम दयालु हैं। आप अशरण (जिसको कोई शरण नही है) उसके लिए भी सहारा हैं, आधार हैं। ये दुष्ट कर्म मुझे दु:ख दे रहे हैं, इसलिए मैं आपसे पुकार कर रहा हूँ। एक गाँव का स्वामी/राजा भी अपने किसी प्रजाजन को दु:खी देखकर दया करता है तो आप तो त्रिलोक (तीनलोक) के स्वामी हैं, आप मुझे कर्मबंधन से छुटकारा क्यों नहीं दिला सकते? हृदय से संसार का ताप तब ही मिटेगा जब अन्तर को शीतल, दयारूपी अमृत से धोकर/शुद्धकर उस शान्त पवित्र हृदय में आपको आसीन करूँ, विराजमान करूँ, आपके दोनों चरण-कमलों को विराजित करूँ।

आपसे यही विनती है कि मेरे संसार का निवारण करो, मैं दु:खों से त्रस्त हूँ, दग्ध हूँ, दु:खी हूँ, आचार्य पद्मनंदि के करुणाष्टक का आश्रय लेकर में अपने लाभ के लिए आपसे अर्ज करता हूँ। मैं भूधरदास आपकी शरण में आया हूँ, हे जगत्पति! अब मेरी लाज रखिए, मुझ पर करुणा कीजिए।

(४२)

विनती

अहो! जगतगुरु एक, सुनियो अरज हमारी।
तुम हो दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी॥ १॥

इस भव-वन में वादि, काल अनादि गमायो।
भ्रमत चहूँगति माहिं, सुख नहिं दुख बहु पायो॥ २॥

कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैं जी।
मनमान्यां दुख देहिं, काहूसों नाहिं डरैं जी॥ ३॥

कबहूं इतर निगोद, कबहूं नर्क दिखावै।
सुर-नर पशुगतिमाहिं, बहुविधि नाच नचावै॥ ४॥

प्रभु! इनके परसंग, भव भव माहिं बुरे जी।
जे दुख देखे देव!, तुमसों नाहिं दुरे जी॥ ५॥

एक जन्मकी बात, कहि न सको सुनि स्वामी।
तुम अनन्त परजाय, जानत अंतरजामी॥ ६॥

मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे॥ ७॥

ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डार्‌यो।
इनही तुम-मुझमाहिं, हे जिन! अंतर पार्‌यो॥ ८॥

पाप पुण्य की दोइ, पाँयनि बेरी डारी।
तन कारागृह माहिं, मोहि दियो दुःख भारी॥ ९॥

इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
विन कारन जगवंद्य!, बहुविधि वैर लियो जी॥ १०॥

अब आयो तुम पास, सुनि जिन! सुजस तिहारो।
नीतिनिपुन जगराय!, कीजे न्याव हमारो॥ ११॥

दुष्टन देहु निकार, साधुनकों रखि लीजे।
विनवै 'भूधरदास', हे प्रभु! ढील न कीजे॥ १२॥

हे जगत्गुरु! हमारी एक अरज सुनिए। आप तो दीन-दुखियों पर दया करनेवाले हो। (आप मुक्त हो अतः सुखी हो) और मैं दुखिया हूँ, संसारी हूँ। मैंने इस संसाररूपी वन में चारों गतियों में भ्रमण करते-करते अनादि काल व्यर्थ बिता दिया, फिर भी सुख नहीं पाया बल्कि दुःख ही बहुत पाया। कर्मरूपी शत्रु अत्यन्त बलशाली है, वह किसी की नहीं सुनता, मनचाहे दुःख देता है, वह किसी से नहीं डरता। वह कभी तो इतर निगोद में ले जाता है, कभी नरक दिखाता है, कभी देव, मनुष्य और तिर्यंचगति में अनेक प्रकार के नाच नचाता है। हे प्रभु! इनका प्रसंग हर भव में बुरा है। इसने जो-जो दुःख दिखलाए हैं वे आपसे छुपे हुए नहीं हैं।

मैं तो आपको एक जन्म की बात भी कह नहीं सकता, (क्योंकि वह भी कहने में असमर्थ हूँ) पर आप तो घट-घट की जाननेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, अनन्त पर्यायों को जानते हैं; मैं अकेला हूँ, अनाथ हूँ और ये सब कर्म मिलकर बहुत घने हो गए हैं। हे स्वामी सुनिए, इन्होंने मुझे बेहाल कर दिया है। मेरे ज्ञान-धन को, ज्ञानरूपी महान निधि को इन्होंने लूट लिया है और मुझे निर्बल व दरिद्र बना डाला है। इस ही कारण आपके और मेरे बीच इतना अंतर/दरार पड़ गई है।

इन कर्मों ने पावों में पाप और पुण्य की बेड़ी डाल दी है और मुझे देहरूपी कारागृह में डालकर बहुत दुःख दिए हैं। मैंने इन कर्मों का किंचित् भी, कुछ भी नहीं बिगाड़ा। हे जगत्वंद्य! ये बिना कारण ही मुझ से अनेक प्रकार की दुश्मनी निकाल रहे हैं, वैर साध रहे हैं।

हे प्रभु, हे जिन! मैं आपका सुयश सुनकर अब आपके पास आया हूँ। हे नीति-निपुण (न्याय करने में कुशल), आप ही मेरा न्याय कीजिए। इन दुष्ट कर्मों को निकालकर बाहर कीजिए और सदवृत्तियों को/सदगुणों को रख लीजिए। भूधरदास विनती करते हैं - हे प्रभु! अब इसमें विलम्ब मत कीजिए। ढील मत कीजिए।

दुरे = छिपाना।

(४३)

विनती

जै जगपूज परमगुरु नामी, पतित उधारन अंतरजामी।
दास दुखी, तुम अति उपगारी, सुनिये प्रभु! अरदास हमारी॥ १॥

यह भव घोर समुद्र महा है, भूधर भ्रम-जल-पूर रहा है।
अंतर दुख दुःसह बहुतेरे, ते बड़वानल साहिब मेरे॥ २॥

जनम जरा गद मरन जहां है, ये ही प्रबल तरंग तहां है।
आवत विपति नदीगन जामें, मोह महान मगर इक तामें॥ ३॥

तिस मुख जीव पर्‌यो दुख पावैं, हे जिन! तुम बिन कौन छुड़ावै।
अशरन-शरन अनुग्रह कीजे, यह दुख मेटि मुकति मुझ दीजे॥ ४॥

दीरघ काल गयो विललावैं, अब ये सूल सहे नहिं जावैं।
सुनियत यों जिनशासनमाहीं, पंचम काल परमपद नाहीं॥ ५॥

कारन पांच मिलैं जब सारे, तब शिव सेवक जाहिं तुम्हारे।
तातैं यह विनती अब मेरी, स्वामी! शरण लई हम तेरी॥ ६॥

प्रभु आगैं चितचाह प्रकासौं, भव भव श्रावक-कुल अभिलासौं।
भव भव जिन आगम अवगाहौं, भव भव शक्ति शरण की चाहौं॥ ७॥

भव भवमें सत संगति पाऊं, भव भव साधनके गुन गाऊं।
परनिंदा मुख भूलि न भाखूं, मैत्रीभाव सबनसों राखूं॥ ८॥

भव भव अनुभव आतमकेरा, होहु समाधिमरण नित मेरा।
जबलौं जनम जगतमें लाधौं, काललबधि बल लहि शिव साधौं॥ ९॥

तबलौं ये प्रापति मुझ हूजौ, भक्ति प्रताप मनोरथ पूजौ।
प्रभु सब समरथ हम यह लोरें, 'भूधर' अरज करत कर जोरैं॥ १०॥

हे परमगुरु! आप जगत के द्वारा पूज्य हैं, आपका यश चारों ओर फैल रहा है। आप गिरे हुओं का, पतितों का उद्धार करनेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, घट-घट के

ज्ञाता हैं। हम आपके दास बहुत दुखी हैं, आप उपकार करनेवाले हो इसलिए हे प्रभु! अब हमारी अरज सुनिये। यह संसार अत्यन्त विकट समुद्र है, इसमें अनन्तकाल से भव-भ्रमण हो रहा है। मैं इसमें डूब रहा हूँ, इसमें बहुत असहनीय दुःख हैं, वे समुद्र में अग्नि के समान अर्थात् बड़वानल के समान मेरे अन्तर में दहक रहे हैं।

इस संसाररूपी समुद्र में जन्म, मृत्यु, रोग और बुढ़ापेरूपी ऊँची-ऊँची तरंगें उठ रही हैं, इसमें विपत्तियों की अनेक नदियाँ आकर मिल जाती हैं, उनमें मोहरूपी एक विकराल मगर निवास कर रहा है। उस मगर के मुँह में पड़नेवाला जीव दुःख पाता है, उसे आपके बिना कौन छुड़ा सकता है! हे अशरणों के शरण! जिनको कोई शरण देनेवाला नहीं उनके शरणदाता आप ही हैं। मुझ पर कृपा कीजिए और मेरे इस दुख का निवारण कर मुझे मुक्त कराइए।

मुझे दुःख से विलाप करते हुए बहुत समय बीत गया, अब यह दुःख, यह पीड़ा सही नहीं जाती। सुनते हैं कि जैन शासन में इस पंचम काल में यहाँ से मुक्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष नहीं होता।

वस्तु-स्वभाव, दैव (निमित्त), पुरुषार्थ, काललब्धि और भवितव्य -- ये पाँचों कारण मिलें तब आपके सेवक को मुक्ति प्राप्त हो। इसलिए हे स्वामी! अब मेरी आपसे विनती है, हम तेरी शरण में आए हैं।

हे प्रभु! मुझे अब प्रकाश मिला है और मैं चाहता हूँ कि मुझे आगामी भवों में भी श्रावक कुल की ही प्राप्ति हो। जिन-आगम का अध्ययन कर उसकी गहनता की थाह लेता रहूँ और भव-भव में मुझे आपकी शरण मिले।

भव-भव में अच्छी संगति पाऊँ और रत्नत्रय-साधना करूँ अर्थात् गुणों की महिमा गाऊँ, उन्हें अंगीकार करूँ। कभी मेरे मुख से किसी अन्य की निन्दा न हो, मैं सभी जीवों से मैत्री-भाव रखूँ।

जब तक मेरा यह भवचक्र चले मैं भव-भव में निरन्तर अपनी आत्मा का ध्यान करूँ, मेरा सदैव समाधिमरण हो और काललब्धि का योग पाकर, बल पाकर मोक्षमार्ग पर बढ़ता रहूँ अर्थात् साधना में लगा रहूँ। हे प्रभु! जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक मुझे आपकी भक्ति करने का - पूजा करने का मनोरथ प्राप्त हो। भूधरदास हाथ जोड़कर अर्ज करते हैं कि हम सदैव आप समर्थवान का गुणगान गाते रहें।

(४४)

राग सोरठ

सुन ज्ञानी प्राणी, श्री गुरु सीख सयानी॥ टेक॥
नरभव पाय विषय मति रेवे, ये दुरगति बीजानी॥ सुन.॥

यह भव कुल यह मेरी महिमा, फिर समझी जिनवानी।
इस अवसर में यह चपलाई, कौन समझ उर आनी॥ १॥ सुन.॥

चंदन काठ-कनक के भाजन, भरि गंगाका पानी।
तिल खलि रांधत मंदमती जो, तुझ क्या रीस बिरानी॥ २॥ सुन.॥

'भूधर' जो कथनी सो करनी, यह बुद्धि है सुखदानी।
ज्यों मशालची आप न देखै, सो मति करै कहानी॥ ३॥ सुन.॥

हे ज्ञानी जीव! श्री गुरु की विवेकपूर्ण सीख को सुन। यह मनुष्य-जन्म पाकर विषयों में लिप्त मत हो, क्योंकि यह ही आगे होनेवाली दुर्गति का बीज है, कारण है। तेरा यह मनुष्य भव, यह कुल, तेरी प्रतिष्ठा और जिनवाणी का बोध - इन सबका एकसाथ मिलना एक दुर्लभ अवसर है। इस सुअवसर में स्थिर न होकर चंचल होना यह तेरी कैसी समझदारी है? चंदन की लकड़ी जलाकर सोने के बासन (बर्तन) में गंगा का पवित्र जल लेकर उसमें तिलहन की खल को कोई पकाने लगे, तो उस पराये मंदमति व्यक्ति पर क्रोधित होने से क्या होगा?

भूधरदास कहते हैं कि जिसके कहने व करने में अन्तर नहीं हो वह ही समझ सुखदायी है। कोई मशालची मशाल जलाकर भी स्वयं को न देख सके, तू भी अपनी वैसी ही स्थिति मत कर।

रीस - क्रोध, गुस्सा, नाराजगी। बिरानी = पराया।

(४५)

राग मलार

वे मुनिवर कब मिलि है उपगारी॥ टेक॥
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर, संवर भूषणधारी॥ वे मुनि.॥

कंचन-काच बराबर जिनकै, ज्यौं रिपु त्यौं हितकारी।
महल-मसान मरन अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी॥ १॥ वे मुनि.॥

सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी।
सेवत जीव सुवर्ण सदा जै, काय-कारिमा टारी॥ २॥ वे मुनि.॥

जोरि जुगल कर 'भूधर' विनवै, तिन पद ढोक हमारी।
भाग उदय दरसन जब पाऊं, ता दिनकी बलिहारी॥ ३॥ वे मुनि.॥

वे मुनिवर जो उपकार करनेवाले है वे मिलें, उनके दर्शन हों - ऐसा सुयोग कब होगा! वे साधु जो निर्वस्त्र हैं, नग्न हैं, दिशाएँ ही जिनके वस्त्र हैं, जो शुद्ध ध्यान में लीन, समस्त आस्रवों से विरत होकर कर्मों के आगमन को रोकने की क्रिया 'संवर' को धारण किए हुए हैं। वे साधु जो शत्रु व मित्र, स्वर्ण व कांच, महल व मसान (श्मसान), जीवन व मृत्यु, सम्मान व गाली सभी में समताभाव रखते हैं, जिनके समक्ष ये सभी बराबर हैं, वे मिलें, ऐसा सुयोग कब होगा!

वे साधु जो सम्यक्ज्ञान के पवन झकोरों से प्रोत्साहित तप की अग्नि में समस्त परभावों की आहुति देते हैं। कायरूपी कालिमा से अपने को अलग रखकर सुवर्ण के समान अपने शुद्ध स्वभाव में रत रहते हैं, उनके दर्शनों का सुयोग कब होगा!

भूधरदास दोनों हाथ जोड़कर विनयावनत उनके चरण-कमलों में नत हैं। भाग्योदय से जिस दिन ऐसे साधु के दर्शन का सौभाग्य मिले, उस दिन की बलिहारी है, उस पर सब-कुछ निछावर है, उत्सर्ग है क्योंकि वह दिन मेरे जीवन में पूज्य होगा।

(४६)

राग सोरठ

सो गुरुदेव हमारा है साधो ॥ टेक ॥
जोग-अगनि मैं जो थिर राखैं, यह चित्त चंचल पारा है ॥

करन-कुरंग खरे मदमाते, जप-तप खेत उजारा है ।
संजम-डोर-जोर वश कीने, ऐसा ज्ञान-विचारा है ॥ १ ॥ सो गुरु. ॥

जा लक्ष्मीको सब जग चाहै, दास हुआ जग सारा है ।
सो प्रभुके चरननकी चेरी, देखो अचरज भारा है ॥ २ ॥ सो गुरु. ॥

लोभ-सरप के कहर जहर की, लहरि गई दुख टारा है ।
'भूधर' ता रिखि का शिख हूजे, तब कछु होय सुधारा है ॥ ३ ॥ सो गुरु. ॥

हे साधक, हमारा गुरु तो वह ही है जो पारे के समान चंचल चित्त को भी योग की अग्नि में स्थिर रखता है। मदोन्मत्त (मद से उन्मत), इंद्रियरूपी चंचल हरिणों ने हमारे जप-तपरूपी खेत को उजाड़ दिया है। पर जिसने संयमरूपी डोर से बाँधकर उन्हें वश में किया है, ऐसा ज्ञान जिसे हुआ है, वह ज्ञानधारी ही हमारा गुरु है।

सारा जगत जिस लक्ष्मी को चाहता है, जिस लक्ष्मी का दास हुआ है वह लक्ष्मी भी उस प्रभु के चरणों की दासी है, यह बड़ा आश्चर्य है!

लोभरूपी सर्प के विष की घातक लहरों के दुःखों को जिसने टाल दिया है, नाश कर दिया है ऐसे गुरु का शिष्य होने पर ही कुछ सुधार होना, कल्याण होना, उद्धार होना संभव है।

करन = इन्द्रिय। कुरंग = हरिण। रिख - ऋषि। शिख = शिष्य। उजारा - उजाड़ दिये।

(४७)

अब पूरी कर नींदड़ी, सुन जीया रे! चिरकाल तू सोया॥
माया मैली रातमें, केता काल विगोया॥ अब. ॥

धर्म न भूल अयान रे! विषयोंवश वाला।
सार सुधारस छोड़के, पीवै जहर पियाला॥ १॥ अब. ॥

मानुष भवकी पैठमैं, जग विणजी आया।
चतुर कमाई कर चले, मूढ़ौं मूल गुमाया॥ २॥ अब. ॥

तिसना तज तप जिन किया, तिन बहु हित जोया।
भोगमगन शठ जे रहे, तिन सरवस खोया॥ ३॥ अब. ॥

काम विथापीड़ित जिया, भोगहि भले जानैं।
खाज खुजावत अंगमें, रोगी सुख मानैं॥ ४॥ अब. ॥

राग उरगनी जोरतैं, जग डसिया भाई!
सब जिय गाफिल हो रहे, मोह लहर चढ़ाई॥ ५॥ अब. ॥

गुरु उपगारी गारुड़ी, दुख देख निवारैं।
हित उपदेश सुमंत्रसों, पढ़ि जहर उतारैं॥ ६॥ अब. ॥

गुरु माता गुरु ही पिता, गुरु सज्जन भाई।
'भूधर' या संसारमें, गुरु शरनसहाई॥ ७॥ अब. ॥

हे जीव! अब तो तू इस नींद को (अज्ञान को) समाप्त कर, जिसमें चिरकाल से तू सोया ही चला आ रहा है। इन मायावी उलझनों, चिन्ता, सोच-विचार की रात में तूने अपना कितना समय खो दिया! हे अज्ञानी! विषयों को वश में करनेवाले धर्म को तू भूल मत। यह (धर्म) ही तो सारे अमृत रस का सार है, मूल है, आधार है और तू इसे छोड़कर जहर का प्याला पीता चला आ रहा है।

तूने मनुष्य भव पाया है, ऐसी साख लेकर तू इस संसार में व्यापार हेतु आया है। जो चतुर व्यक्ति हैं, वे तो अपने साथ शुद्धि अथवा शुभ कर्म की कमाई करके चले गए, परन्तु जो मूर्ख हैं, वे जो कुछ लाए थे वह भी गँवा गये।

जिन्होंने तृष्णा को त्याग करके तप किया, उन्होंने अपना हित देखा और पाया। परन्तु जो अज्ञानी भोगों में ही मग्न रहे, उन्होंने अपना सर्वस्व/सब-कुछ खो दिया।

काम की पीड़ा से व्यथित यह जीव भोगों को उसी प्रकार भला जान रहा है जैसे खुजली का रोगी खुजाने में ही आनन्द की अनुभूति करता है किन्तु परिणाम में लहु-लुहान होकर दु:खी होता है।

रागरूपी नागिन ने पूरे बल से इस जगत को डस लिया है और सारे ही जीव उस विष-मोह की लहर के प्रभाव से बेसुध हो गए हैं; गुरु उपकारी हैं, वे दु:ख को देखकर जहर को दूर करने के लिए उपदेश देते हैं, मंत्र-पाठ करते हैं।

गुरु ही माता है, गुरु ही पिता है, गुरु ही भाई व साथी हैं। भूधरदास कहते हैं कि इस संसार में गुरु ही एकमात्र शरण हैं, वे ही सहायक हैं।

बिगोया = खोया। उरगनी = सर्पिनी।

(४८)

पंच नमोकारमंत्र-माहात्म्य की ढाल

श्रीगुरु शिक्षा देत हैं, सुनि प्रानी रे!
सुमर मंत्र नौकार, सीख सुनि प्रानी रे!
लोकोत्तम मंगल महा, सुनि प्रानी रे!
अशरन-जन-आधार, सीख सुनि प्रानी रे!॥ १॥

प्राकृत रूप अनादि है, सुनि प्रानी रे!
मित अच्छर पैंतीस, सीख सुनि प्रानी रे!
पाप जाय सब जापतैं, सुनि प्रानी रे!
भाष्यो गणधर ईश, सीख सुनि प्रानी रे!॥ २॥

मन पवित्र करि मंत्रको, सुनि प्रानी रे!
सुमरै शंका छोरि, सीख सुनि प्रानी रे!
वांछित वर पावै सही, सुनि प्रानी रे!
शीलवंत नर नारि, सीख सुनि प्रानी रे!॥ ३॥

विषधर-बाघ न भय करै, सुनि प्रानी रे!
विनसैं विघन अनेक, सीख सुनि प्रानी रे!
व्याधि विषम-विंतर भजैं, सुनि प्रानी रे!
विपत न व्यापै एक, सीख सुनि प्रानी रे!॥ ४॥

कपिको शिखरसमेदपै, सुनि प्रानी रे!
मंत्र दियो मुनिराज, सीख सुनि प्रानी रे!
होय अमर नर शिव वस्यो, सुनि प्रानी रे!
धरि चौथी परजाय, सीख सुनि प्रानी रे!॥ ५॥

कह्यो पदमरुचि सेठने, सुनि प्रानी रे!
सुन्यो वैलके जीव, सीख सुनि प्रानी रे!
नर सुखके सुख भुंजकै, सुनि प्रानी रे!
भयो राव सुग्रीव, सीख सुनि प्रानी रे!॥ ६॥

दीनों मंत्र सुलोचना, सुनि प्रानी रे!
विंध्यश्रीको जोइ, सीख सुनि प्रानी रे!
गंगादेवी अवतरी, सुनि प्रानी रे!
सर्प-डसी थी सोई, सीख सुनि प्रानी रे!॥७॥

चारुदत्तपै वनिकने, सुनि प्रानी रे!
पायो कूपमँझार, सीख सुनि प्रानी रे!
पर्वत ऊपर छागने सुनि प्रानी रे!
भये जुगम सुर सार, सीख सुनि प्रानी रे!॥८॥

नाग नागिनी जलत हैं, सुनि प्रानी रे!
देखे पासजिनिंद सीख सुनि प्रानी रे!
मंत्र देत तब ही भये, सुनि प्रानी रे!
पदमावति धरनेंद्र, सीख सुनि प्रानी रे!॥९॥

चहलेमें हथिनी फँसी, सुनि प्रानी रे!
खग कीनों उपगार, सीख सुनि प्रानी रे!
भव लहिकै सीता भई, सुनि प्रानी रे!
परम सती संसार, सीख सुनि प्रानी रे!॥१०॥

जल मांगै शूली चढ्यो, सुनि प्रानी रे!
चोर कंठ-गत-प्रान, सीख सुनि प्रानी रे!
मंत्र सिखायो सेठने, सुनि प्रानी रे!
लह्यो सुरग सुख-थान, सीख सुनि प्रानी रे!॥११॥

चंपापुरमें ग्वालिया, सुनि प्रानी रे!
धोखै मंत्र महान, सीख सुनि प्रानी रे!
सेठ सुदर्शन अवतर्‌यो, सुनि प्रानी रे!
पहले भव निरवान, सीख सुनि प्रानी रे!॥१२॥

मंत्र महातमकी कथा, सुनि प्रानी रे!
नामसूचना एह, सीख सुनि प्रानी रे!

श्रीपुन्यास्रवग्रंथमें, सुनि प्रानी रे!
तारे सो सुनि लेहु, सीख सुनि प्रानी रे!॥ १३॥

सात-विसन सेवन हठी, सुनि प्रानी रे!
अधम अंजना चोर, सीख सुनि प्रानी रे!
सरधा करते मंत्रकी, सुनि प्रानी रे!
सीझी विद्या जोर, सीख सुनि प्रानी रे!॥ १४॥

जीवक सेठ समोधियो, सुनि प्रानी रे!
पापाचारी स्वान, सीख सुनि प्रानी रे!
मंत्र प्रतापैं पाइयो, सुनि प्रानी रे!
सुंदर सुरग विमान, सीख सुनि प्रानी रे!॥ १५॥

आगैं, सीझे सीझि है, सुनि प्रानी रे!
अब सीझैं निरधार, सीख सुनि प्रानी रे!
तिनके नाम बखानतैं, सुनि प्रानी रे!
कोई न पावै पार, सीख सुनि प्रानी रे!॥ १६॥

बैठत चिंतै सोवतै, सुनि प्रानी रे!
आदि अंतलौं धीर, सीख सुनि प्रानी रे!
इस अपराजित मंत्रको, सुनि प्रानी रे!
मति विसरै हो वीर, सीख सुनि प्रानी रे!॥ १७॥

सकल लोक सब कालमें, सुनि प्रानी रे!
सरवागममें सार, सीख सुनि प्रानी रे!
'भूधर' कबहुं न भूलि है, सुनि प्रानी रे!
मंत्रराज मन धार, सीख सुनि प्रानी रे!॥ १८॥

श्री गुरु यह शिक्षा देते हैं - अरे प्राणी! तू सुन। तू णमोकार मंत्र का स्मरण कर, यह लोक में सर्वोपरि है, मंगल है व उत्तम है। जिनको किसी की शरण नहीं है, उन सबका यही एक आधार है, सहारा है, आलंबन है।

यह स्वभावरूप से अनादि से है, इसमें पैंतीस मधुर अक्षर हैं। गणधर देव ने बताया है कि इसके जप से समस्त पापों का नाश होता है। दृढ़ श्रद्धा रखकर, सब शंकाओं को छोड़कर, निशंकित होकर, जो कोई भी शीलवंत नर-नारी मन में इसका स्मरण करते हैं वे वांछित फल प्राप्त करते हैं।

इस मंत्र के स्मरण से सर्प और सिंह का भय नहीं रहता, अनेक विघ्न टल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं; व्यंतर आदि की विषम व्याधि भी दूर हो जाती है, भाग जाती है और एक भी विपत्ति नहीं ठहरती।

मुनिराज ने सम्मेदशिखर पर एक बंदर को यह मंत्र दिया - तो वह चौथी गति में अर्थात् स्वर्ग में - देवगति में उत्पन्न हुआ। पद्मरुचि सेठ ने बैल की पर्याय में इसे सुना, वह मनुष्य व देव गति के सुखों को भोगकर राजा सुग्रीव हुआ। सुलोचना ने विंध्यश्री को यह मंत्र दिया, जिसने सर्प बनकर डसा था वह गंगादेवी के रूप में प्रकट हुई। वणिक ने चारुदत्त से कुए के बीच में और बकरे ने पहाड़ के ऊपर यह मंत्र सुना और सुनकर (दोनों ने) देवगति पाई।

पार्श्व जिनेन्द्र ने नाग-नागिनी को जलते देखकर यह मंत्र सुनाया जिसके प्रभाव से वे धरणेन्द्र और पद्मावती हुए।

क्रौंचड़ में फँसी हथिनी को विद्याधर ने यह मंत्र सुनाया और वह मरकर परम सती सीता के रूप में जनमी।

जब फाँसी पर चढ़े हुए चोर के कंठ में प्राण थे अर्थात् जब वह मरणासन्न था तब उसने जल की याचना की तो सेठ ने उसे यह मंत्र सुनाया और मंत्र के प्रभाव से वह मरकर स्वर्ग में - देवगति में उत्पन्न हुआ। चंपापुर में ग्वाले ने मंत्र को बार-बार दुहराया तो वह सेठ सुदर्शन के रूप में जन्म लेकर उसी भव से मुक्त हो गया।

इस मंत्र के महात्म्य की कथा के प्रभाव से किस-किस को क्या-क्या हुआ उसी की सूचना पुण्यास्रव कथाकोष में है। जो उस ग्रंथ को सुनता है वह ही तिर जाता है।

अंजन चोर जैसा महापापी जो सप्त व्यसनों में लिप्त था, उसने मंत्र पर श्रद्धा की और उसके बल से विद्या सिद्ध कर ली।

जीवंधर सेठ ने पापी कुत्ते को संबोधित किया और यह मंत्र सुनाया। इस मंत्र के प्रभाव से उसने स्वर्ग के सुन्दर विमान में जाकर जन्म लिया।

इस प्रकार इस मंत्र से बहुत प्राणी लाभान्वित हुए हैं, बहुत से प्राणी संपन्न हुए हैं, संपन्न हैं और आगे भी होंगे, उनके नामों का वर्णन करते-करते कोई उनका पार नहीं पा सकता। सोते-उठते-बैठते अपराजित इस मंत्र का, आदि से अंत तक सर्वथा इसका चिन्तन कर, तू इसका विस्मरण मत कर।

सारे लोक में - सब काल में सम्पूर्ण आगम का सार यही है। भूधरदास कहते हैं - यह मंत्रराज है, इसको हृदय में धारण करना, कभी भी इसका विस्मरण मत करना।

छाग = बकरी। चहला = कीचड़। खग = विद्याधर। जीवक सेठ = जीवन्धर सेठ।

(४९)

राग सोरठ

भलो चेत्यो वीर नर तू, भलो चेत्यो वीर॥ टेक॥
समुझि प्रभुके शरण आयो, मिल्यो ज्ञान वजीर॥ भलो.॥

जगतमें यह जनम हीरा, फिर कहां थो धीर।
भलीवार विचार छांड्यो, कुमति कामिनी सीर॥ १॥ भलो.॥

धन्य धन्य दयाल श्रीगुरु सुमरि गुणगंभीर।
नरक परतैं राखि लीनों, बहुत कीनी भीर॥ २॥ भलो.॥

भक्ति नौका लही भागनि, कितक भवदधि नीर।
ढील अब क्यों करत 'भूधर', पहुंच पैली तीर॥ ३॥ भलो.॥

हे वीर पुरुष! तू चेत गया है, यह उचित ही है। तू सोच-समझकर स्थिर चित्त से प्रभु की शरण आया है, जहाँ तुझे ज्ञानरूपी मंत्री (प्रमुख सलाहकार व सहायक) मिला है। यह मनुष्य जन्म इस जगत में हीरा के समान है, हीरा-तुल्य है, यह जानकर फिर कोई धैर्य कैसे रखे? इस प्रकार सम्यक विचार आते ही कुमतिरूपी स्त्री से संबंध ढीले हो गए हैं/छोड़ दिये हैं।

अब श्री गुरु के गहन गुणों का स्मरण करके धन्य हो गया। बहुत कष्टों को सहन करने के पश्चात् पर-रूप नरक से अलग स्वात्मबोधि को प्राप्त हुआ अर्थात् तुझे भेद-ज्ञान हुआ है।

भाग्यवश यह भक्ति नौका प्राप्त हुई है, तो संसार-समुद्र कितना गहरा है? अब इसका क्या विचार! अब इससे क्या प्रयोजन! अर्थात् अब संसार-समुद्र अधिक गहरा नहीं रह गया है। भूधरदास कहते हैं कि अब देर मत कर, प्रमाद मत कर और इस साधन से भवसागर के उस पार पहुँच जा।

पैली = परली -दूसरी।

(५०)

गुरु-विनती

बन्दौं दिगम्बर गुरुचरन, जग तरन-तारन जान!
जे भरम भारी रोगको, हैं राजवैद्य महान॥
जिनके अनुग्रह विन कभी, नहिं कटै कर्म जँजीर।
ते साधु मेरे उर/मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥ १॥

यह तन अपावन अशुचि है, संसार सकल असार।
ये भोग विष-पकवानसे, इस भाँति सोच-विचार॥
तप तिरति श्रीगुरु धन धरे, सब त्यागि परिग्रह भीर।
ते साधु मेरे उर/मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥ २॥

जे काच-कंचन सम गिनैं, अरि-मित्र एक सरूप।
निंदा-बड़ाई सारिखी, वनखण्ड-शहर अनूप॥
सुख-दुःख जीवन-मरनमें, नहिं खुशी नहिं दिलगीर।
ते साधु मेरे उर/मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥ ३॥

जे बाह्य परवत वन वसैं, गिरी गुहा महल मनोग।
सिल सेज समता सहचरी, शशिकिरण दीपक जोग॥
मृग मित्र भोजन तपमई, विज्ञान निरमल नीर।
ते साधु मेरे उर/मन वसो, मेरी हरो पातक पीर॥ ४॥

सूखैं सरोवर जल भरे, सूखै तरंगनि तोय।
वाटैं वटोही ना चलैं, जहां घाम गरमी होय॥
तिस काल मुनिवर तप तपैं, गिरिशिखर ठाड़े धीर।
ते साधु मेरे उर/मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥ ५॥

घनघोर गरजैं घनघटा, जल परै पावसकाल।
चहुँ ओर चमकै वीजुरी, अति चलै शीतल व्याल॥
तरुहेट तिष्ठैं तब जती, एकान्त अचल शरीर।
ते साधु मेरे उर/मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥ ६॥

जब शीत मास तुषारसों, दाहै सकल वनराय।
जब जमै पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय॥
तब नगन निवसैं चौहटैं, अथवा नदीके तीर।
ते साधु मेरे उर/मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥७॥

कर जोर 'भूधर' बीनवै, कब मिलैं वह मुनिराज।
यह आस मनकी कब फलै, मेरे सरैं सगरे काज॥
संसार विषम विदेशमें, जे बिना कारण वीर।
ते साधु मेरे उर/मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥८॥

मैं उन दिगम्बर गुरु के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिन्हें इस जगत से तारनेवाले जहाज के रूप में जाना जाता है। जो भ्रमरूपी, अज्ञानरूपी कठिन/असाध्य रोगों के निवारण के लिए विशेषज्ञ वैद्य हैं। जिनकी कृपा के बिना यह कर्म-शृंखला नष्ट नहीं की जा सकती, काटी नहीं जा सकती, वे साधु मेरे हृदय में निवास करें, मेरे पापों की पीड़ा का हरण करें, उन्हें दूर करें।

यह देह अपवित्र है, मैली है और यह संसार सारहीन है। ये विषय-भोग विषैले पकवान की भाँति हैं, इस प्रकार विचारकर तप करने हेतु श्री मुनिराज सब परिग्रह छोड़कर भीड़ से दूर निर्जन वन में रहते हैं, वे साधु मेरे हृदय में निवास करें, मेरे पापों की पीड़ा को दूर करें।

जो काँच-कंचन, शत्रु-मित्र, निंदा-बड़ाई, वन और सुन्दर शहर में भेद नहीं करते अर्थात् सबको एक-समान मानते हैं; सुख-दुःख, जीवन और मरण में न उन्हें खुशी होती है और न उदासी, वे साधु मेरे हृदय में निवासकर मेरे पापों की पीड़ा को दूर करें।

जो बाहर वन में, पर्वत पर रहते हैं, पर्वतों की गुफाएँ ही जिनके लिए मनोज्ञ महल हैं, पाषाण की शिला ही जिनके समताभाव की साथी हैं और चन्द्रमा की किरणें ही दीपक हैं, चन्द्रमा की शीतलता ही जिनका भोजन है और निज का ज्ञानवर्द्धन ही निर्मल जल है जिनका वे साधु मेरे हृदय में निवास करें, मेरे पापों की पीड़ा को दूर करें।

जलभरे सरोवर भी जब सूख जायें, नदियाँ भी सूख जायें, रास्ते में राहगीर भी न चलें, सूर्य की प्रचण्डता के कारण तीव्र गरमी हो, उस समय भी पर्वत के शिखर पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े मुनि तप में लीन रहते हैं, वे साधु मेरे हृदय में निवास करें, मेरे पापों की पीड़ा का हरण करें।

घनघोर घटाएँ छा रही हों, घने बादल गरज रहे हों, वर्षा ऋतु में तीव्र वर्षा हो रही हो, चारों ओर बिजलियाँ कौंध रही हों और बरसात की ठंडी हवाएँ बह रही हों, उस समय वृक्ष के नीचे एकान्त में जो निश्चल मुद्रा में बैठते हों वे साधु मेरे हृदय में निवास करें, मेरे पापों की पीड़ा का हरण करें।

जब सर्दी में पाला पड़ने के कारण जंगल में सभी जगह दाहा (शीतदाह) लग गया हो, तालाबों में पानी जम गया हो, सर्दी से सबकी काया काँप रही हो, तब खुले मैदान में अथवा नदी के किनारे दिगम्बर मुद्रा में तप में लीन रहनेवाले साधु मेरे हृदय में निवास करें, मेरे पापों का हरण करें।

भूधरदास कर (हाथ) जोड़कर विनती करते हैं कि कब ऐसे मुनिराज के दर्शनों का सौभाग्य मिले। मेरे मन की आशा पूरी हो, मेरे सारे कार्य सिद्ध हों। इस संसाररूपी अनजान परदेश में बिना किसी कारण के जो सहज ही (भाई, हितैषी) बीर हैं वे साधु मेरे हृदय में निवास करें, मेरे पापों का हरण करें।

उर = मन। सारिखी = समान, बराबर। तरंगनि तोय = नदी का जल। वाटै = रास्ते से, रास्ते में। बटोही = मुसाफिर। पावसकाल = बरसात में। व्याल = पवन। तरु हेट = वृक्ष के नीचे।

(५१)

गुरु-विनती

राग भरतरी (दोहा)

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भव जलधि जिहाज।
आप तिरैं पर तारहीं, ऐसे श्रीऋषिराज॥ १॥ ते गुरु.॥

मोह महारिपु जीतिकैं, छांड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर वन बसै, आतम शुद्ध विचार॥ २॥ ते गुरु.॥

रोग उरग-बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान।
कदली तरु संसार है, त्यागो सब यह जान॥ ३॥ ते गुरु.॥

रतनत्रय निधि उर धरै, अरु निरग्रंथ त्रिकाल।
मार्‌यो काम-खबीसको, स्वामी परम दयाल॥ ४॥ ते गुरु.॥

पंच महाव्रत आदरैं, पांचों समिति समेत।
तीन गुपति पालैं सदा, अजर-अमर पद हेत॥ ५॥ ते गुरु.॥

धर्म धरैं दशलक्षणी, भावैं भावना सार।
सहैं परीसह वीस द्वै, चारित-रतन भँडार॥ ६॥ ते गुरु.॥

जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर-नीर।
शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर॥ ७॥ ते गुरु.॥

पावस रैन डरावनी, वरसै जलधर-धार।
तरुतल निवसैं तब यति, बाजै झंझावार॥ ८॥ ते गुरु.॥

शीत पड़ै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय।
ताल तरंगनिके तटै, ठाड़े ध्यान लगाय॥ ९॥ ते गुरु.॥

इहि विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों कालमँझार।
लागे सहज सरूपमें, तनसों ममत निवार॥ १०॥ ते गुरु.॥

पूरब भोग न चिंतवैं, आगम वांछा नाहिं।
चहुँगतिके दुखसों डरैं, सुरति लगी शिवमाहिं॥ ११॥ ते गुरु.॥

रंगमहलमें पौढ़ते, कोमल सेज बिछाय।
ते पच्छिमनिशि भूमिमें, सौवैं संवरि काय॥ १२॥ ते गुरु.॥

गज चढ़ि चलते गरबसों, सेना सजि चतुरंग।
निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अंग॥ १३॥ ते गुरु.॥

वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमें तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढ़ौ, 'भूधर' मांगै येह॥ १४॥ ते गुरु.॥

जो भव्यजनों को इस संसार-समुद्र से पार उतारने के लिए जहाज के समान हैं, उपदेशक हैं, जो स्वयं भी संसार-समुद्र से पार होते हैं व अन्य जनों को भी पार लगाते हैं, ऐसे श्री ऋषिराज मेरे मन में बसें, निवास करें, अर्थात् मेरे ध्यान के केन्द्र बनें।

जिन्होंने मोहरूपी शत्रु को जीतकर, सब घर-बार छोड़ दिया और जो अपने शुद्ध आत्मा का विचार करने हेतु नग्न दिगम्बर होकर वन में निवास करते हैं ऐसे श्री ऋषिराज मेरे मन में बसें।

यह देह रोगरूपी सर्प की बांबी के समान है और विषयभोग भुजंग/भयंकर सर्प के समान हैं। संसार केले के वृक्ष/तने की भाँति निस्सार है, यह जानकर जिन्होंने इन सबको त्याग दिया है, वे गुरु मेरे मन में बसें।

दर्शन, ज्ञान और चारित्र - इन तीन रत्नों को जो हृदय में धारण करते हैं और जो सदैव स्वयं हृदय से निर्ग्रन्थ अर्थात् ग्रंथिविहीन हैं, जो अन्तः-बाह्य सब परिग्रहों से दूर हैं, जिनने कामवासना को जीत लिया है और जो परमदयालु हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो अजर, अमर पद यानी मोक्ष की प्राप्ति हेतु पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तियों का सदा पालन करते हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो धर्म के दस लक्षणों को धारण करते हैं और बारह भावनाओं को साररूप में अनुभव करते हैं, बाईस परीषहों के त्रास को सहन करते हैं, जो चारित्र के उत्कृष्ट भंडार हैं वे गुरु मेरे मन में बसें।

ज्येष्ठ मास सूर्य की प्रखरता से तप्त होता है, उस समय जलाशयों का जल सूख जाता है, ऐसे समय पर्वत की ऊँची शिखाओं पर जो तप-साधना करते हैं, जिनकी नग्न काया तपन से तप्त होती है, वे गुरु मेरे मन में बसें।

वर्षा ऋतु की सायँ-सायँ करती डरावनी रातें और तेज बरसात में, जबकि तेज तूफ़ानी हवाएँ चल रही हों, तब पेड़ के नीचे साहसपूर्वक जो निश्चल विराजित रहते हैं वे गुरु मेरे मन में बसें।

शीत के मौसम में जब वानर की चंचलता भी सहम जाती है, कम हो जाती है, वन के सारे वृक्ष ठंड से - पाले से झुलस जाते हैं, उस समय तालाब अथवा नदी के किनारे खड़े रहकर ध्यान में जो लीन होते हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो सर्दी, गर्मी, बरसात, तीनों काल में इस प्रकार दुर्द्धर (कठिनाई से धारण किया जानेवाला) तप करते हैं और इसे देह से ममता त्यागकर अपने ज्ञानानन्द स्वरूप के चिंतवन में लीन रहते हैं वे गुरु मेरे मन में बसें।

अतीत में भोगे गए भोगों के विषय में जो कभी चिंतन नहीं करते, उन्हें स्मरण नहीं करते, न भविष्य के लिए कोई आकांक्षाएँ संजोते हैं; चारों गतियों के दु:खों से जो सदा भयभीत हैं और मोक्षरूपी लक्ष्मी से जिनको लौ/लगन लगी है, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो कभी राजमहलों की कोमल शैय्या पर सोते थे और अब रात्रि के अंतिम प्रहर में भूमि पर काय (शरीर) को साधकर सोते हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

जो कभी चतुरंगिनी सेनासहित गर्व से हाथी पर चढ़कर चलते थे, वे ईर्या-समिति का पालन करते हुए, अपने पाँव देख-भालकर-उठाकर रखते हैं और समस्त जीवों के प्रति करुणा रखते हैं, वे गुरु मेरे मन में बसें।

वे गुरु जहाँ-जहाँ अपने चरण रखते हैं वे सभी स्थान इस जगत में तीर्थ बन जाते हैं। भूधरदास यही कामना करते हैं कि इन चरणों की धूलि मेरे मस्तक पर चढ़े अर्थात् उन चरणों की रज मेरे मस्तक को लगाऊँ।

रोगउरगबिल - रोगरूपी सर्प का बिल। काम खवीस = कामरूपी राक्षस। वपु = शरीर। आकरो - तेज। दाझै - जलावे। बाजै - आवाज करती है। झंझावात → झंझावार = बरसात के साथ होनेवाला तूफान, तेज हवा।

(५२)

राग गौरी

देखो भाई! आतमदेव बिराजै॥ टेक॥
इसही हूठ हाथ देवलमैं, केवलरूपी राजै॥

अमल उजास जोतिमय जाकी, मुद्रा मंजुल छाजै।
मुनिजनपूज अचल अविनाशी, गुण बरनत बुधि लाजै॥ १॥ देखो.॥

परसंजोग समल प्रतिभासत, निज गुण मूल न त्याजै।
जैसे फटिक पखान हेतसों, श्याम अरुन दुति साजैं॥ २॥ देखो.॥

'सोऽहं' पद समतासो ध्यावत, घटहीमैं प्रभु पाजै।
'भूधर' निकट निवास जासुको, गुरु बिन भरम न भाजै॥ ३॥ देखो.॥

हे भाई! आत्मारूपी देव विराज रहे हैं, उन्हें देखो। इस साढ़े तीन हाथ के कायारूपी मन्दिर में कैवल्यरूप धारण करनेवाली शुद्धात्मा सुशोभित है।

सर्वमलरहित, उज्ज्वल ज्योति से प्रकाशित उसकी सुन्दर छवि सुशोभित है। वह अचल और अविनाशी आत्मा मुनिजनों द्वारा पूजनीय है, उसके गुणों का वर्णन करते हुए यह बुद्धि भी लज्जित हो जाती है, हार जाती है; क्योंकि उसके गुण अपार हैं इसलिए उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। पारदर्शी स्फटिक पाषाण काले और लाल रंग की आभा के कारण उस रूप ही (काला और लाल) दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार पुद्गल के संयोग से यह निर्मल आत्मा मलसहित दिखाई पड़ता है। परन्तु मूल में उस की शुद्धता नष्ट नहीं होती। 'सोऽहं' - 'वह मैं हूँ' इस पद का जो समतापूर्वक ध्यान करता है, वह अपने ही भीतर निजात्मा का दर्शन करता है। भूधरदास कहते हैं कि जो अपने में ही, अपने ही निकट रह रहा है, उसकी (उस आत्मा की) पहचान, उसके प्रति भ्रम-निवारण गुरु के उपदेश से ही हो सकता है अन्यथा नहीं।

हूठ - साढ़े तीन हाथ की नाप। देवल - मन्दिर, देवालय।

(५३)

राग ख्याल काफी कानड़ी

तुम सुनियो साधो! मनुवा मेरा ज्ञानी ॥ टेक ॥

सत गुरु भेंटा संसय मेटा, यह नीकै करि जानी ॥
चेतनरूप अनूप हमारा, और उपाधि विरानी ॥ १ ॥ तुम सुनियो. ॥

पुद्गल भांडा आतम खांडा, यह हिरदै ठहरानी ।
छीजौ भीजौ कृत्रिम काया, मैं निरभय निरवानी ॥ २ ॥ तुम सुनियो. ॥

मैं ही देखौं मैं ही जानौं, मेरी होय निशानी ।
शबद फरस रस गंध न धारौं, ये बातैं विज्ञानी ॥ ३ ॥ तुम सुनियो. ॥

जो हम चीन्हां सो थिर कीन्हां, हुए सुदृढ़ सरधानी ।
'भूधर' अब कैसें उतरेगा, खड़ग धार जो पानी ॥ ४ ॥ तुम सुनियो. ॥

हे साधक! सुनो, मेरा मनुआ (आत्मा) ज्ञानवान है। सत्गुरु से भेंट होने के पश्चात् हमारा संशय मिट गया है और हमने यह भली प्रकार से जान लिया है कि हमारा तो मात्र एक चैतन्य स्वरूप है जो निराला है, शेष सभी उपाधियाँ बिरानी हैं, अर्थात् परायी हैं, हमारी नहीं हैं, हमसे भिन्न व अलग हैं।

इस पुद्गल देह में आत्मा 'म्यान में तलवार' की भाँति है, जैसे तलवार व म्यान पृथक्-पृथक् हैं वैसे ही आत्मा व देह पृथक्-पृथक् हैं, ऐसी प्रतीति हृदय में धारण करो। देह तो कृत्रिम है, बनावटी है, नश्वर है, नष्ट होनेवाली है इसलिए यह देह चाहे नष्ट हो, चाहे भीगे मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा, मैं पूर्णत: निर्भय हूँ और निर्वाण पाने की क्षमतावाला हूँ।

मैं (आत्मा) ही जानता हूँ, मैं ही देखता हूँ। यह जानना-देखना ही मेरी निशानी है, लक्षण है। ये शब्द-रस-गंध-स्पर्श मेरे (लक्षण, गुण) नहीं हैं; आत्मा इन्हें धारण नहीं करता-यह ज्ञान ही विशिष्ट ज्ञान है, विज्ञान है।

पुद्गल से भिन्न हमने जो वास्तविक रूप में आत्म-परिचय किया है, उसी में एकाग्र होकर, स्थिर होकर, उस ही की दृढ़ श्रद्धा करो। भूधरदास कहते हैं कि जिस प्रकार तलवार पर चढ़ी धार नहीं उतरती उसी प्रकार आत्मा के प्रति श्रद्धा का जो भाव चढ़ा है, दृढ़ हुआ है वह भी नहीं उतरेगा।

खांडा - तलवार।

(५४)

राग सोरठ

अन्तर उज्जल करना रे भाई! ॥ टेक ॥
कपट कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रै ॥

जप-तप-तीरथ-जज्ञ-व्रतादिक आगम अर्थ उचरना रे।
विषय-कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पचि पचि मरना रे ॥ १ ॥ अन्तर. ॥

बाहिर भेष क्रिया उर शुचिसों, कीये पार उतरना रे।
नाहीं है सब लोक-रंजना, ऐसे वेदन वरना रे ॥ २ ॥ अन्तर. ॥

कामादिक मनसौं मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे।
'भूधर' नीलवसन पर कैसैं, केसर रंग उछरना रे ॥ ३ ॥ अन्तर. ॥

अरे भाई! अपने अंतरंग को उज्ज्वल करो - स्वच्छ करो। जब तक तुम कपटरूपी तलवार को नहीं छोड़ोगे तब तक अन्तर उज्ज्वल करने का तुम्हारा काम सफल नहीं होगा अर्थात् तुम्हारी ऐसी करनी से तो तुम्हारा काज सफल नहीं होगा।

जब तक विषय-वासना और कषायरूपी कीचड़ को नहीं धोओगे, दूर नहीं करोगे तब तक जप-तप, तीर्थयात्रा, यज्ञ (पूजा)-व्रत करना, आगम ग्रन्थों को पढ़ना, उनको समझना, उनका कथन करना सब निरर्थक हैं, परिणामशून्य हैं, निष्फल हैं, उनमें व्यर्थ ही पच-पच कर मरना है।

अंतरंग की शुद्धिसहित बाह्य क्रिया का पालन करने पर ही इस संसार-समुद्र को पार किया जा सकता है अन्यथा तो यह सब लोकरंजना है, दिखावा है - ऐसा अनुभवियों/ज्ञानियों का कहना है।

भूधरदास कहते हैं कि जैसे नीले कपड़े पर केसर का रंग नहीं चढ़ सकता उसी प्रकार जब मन इच्छाओं, कामनाओं, कषाय आदि विचारों से मैला हो तो ऐसे में भक्ति-भजन करने से मुक्ति पाना कैसे संभव हो सकता है?

(५५)

राग मलार

अब मेरे समकित सावन आयो ॥ टेक ॥
बीति कुराति मिथ्यामति ग्रीषम, पावस सहज सुहायो ॥

अनुभव दामिनि दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो ।
बोलै विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिनि भायो ॥ १ ॥ अब मेरे. ॥

गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहसायो ।
साधक भाव अंकूर उठे बहु, जित तित हरष सवायो ॥ २ ॥ अब मेरे. ॥

भूल धूल कहिं भूल न सूझत, समरस जल झर लायो ।
'भूधर' को निकसै अब बाहिर, निज निरचूधर पायो ॥ ३ ॥ अब मेरे. ॥

अब मेरे जीवन में सम्यक्त्वरूपी सावन आ गया है। मिथ्यात्व, कुरीति व कुमतिरूप ग्रीष्म की तपन अब समाप्त हो गई, इसलिए यह सम्यक्त्वरूपी पावस (वर्षा) ऋतु अत्यन्त सुहावनी लगती है। अब आत्मानुभवरूपी विद्युत (बिजली) की चमकार होने लगी है, आनन्द और अनुराग (भक्ति) रूपी बादलों की घटा घनी हो चली है, जिसे देखकर विवेकरूपी पपीहे की ध्वनि मुखरित होने लगी है, सुनाई देने लगी है जो सुमतिरूपी सुहागिन को अत्यन्त प्रियकर है।

जैसे बादलों को देखकर मोर पक्षी का मन नाच उठता है, आनन्दित होता है, उसी प्रकार सद्गुरु की उपदेशरूपी गर्जन को सुनकर साधक को सुखानुभूति होती है। साधक के हृदय में बहुप्रकार से भक्ति-भाव के अंकुर फूटने लगते हैं और आनंद की अनुभूति में सरस अभिवृद्धि होती है।

जैसे बरसात के कारण धूलि भीगकर जम जाती है, उसकी प्रवृत्ति/चंचलता नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार समतारस की धारा बरसने से अब भूलरूपी (भ्रमरूपी) धूल अब भूल से भी कहीं दिखाई नहीं पड़ती। भूधरदास कहते हैं कि जिसे निजानन्द की अनुभूति अपने ही भीतर होने लगी हो तो उसे बाहर निकलने से क्या प्रयोजन रह गया!

सुरति = भक्ति, अनुराग, आनन्द। विहसायो = प्रसन्न होना। निरचू = बिल्कुल।

(५६)

राग ख्याल

और सब थोथी बातैं, भज ले श्रीभगवान॥ टेक॥
प्रभु बिन पालक कोइ न तेरा, स्वारथमीत जहान॥

परवनिता जननी सम गिननी, परधन जान पखान।
इन अमलों परमेसुर राजी, भाषैं वेद पुरान॥ १॥ और.॥

जिस उर अन्तर बसत निरंतर, नारी औगुन खान।
तहां कहां साहिबका बासा, दो खांडे इक म्यान॥ २॥ और.॥

यह मत सतगुरुका उर धरना, करना कहिं न गुमान।
'भूधर' भजन न पलक बिसरना, मरना मित्र निदान॥ ३॥ और.॥

हे आत्मन्! तू भगवान का भजन कर, इसके अतिरिक्त सारे क्रिया-कलाप, सारी बातें सारहीन हैं, निस्सार हैं। इस जगत में प्रभु के अलावा कोई भी तेरा अपना हितकारी मित्र, तेरा निर्वाह करनेवाला, पालनेवाला नहीं है। तू परस्त्री को अपनी माता के समान और पराये धन को पाषाण के समान जान। काम और परिग्रह के त्याग के आचरण से परमात्मा की-सी चर्या होती है, ऐसा धर्मग्रन्थों, आगमों, पुराणों में कहा गया है। जिसके हृदय में निरन्तर कामवासना रहती है वह हृदय ही सब दुर्गुणों की खान है अर्थात् कामवासना अवगुणों की खान है। जिसके हृदय में कामवासना रहती है, उसके हृदय में प्रभु का स्मरण नहीं होता। प्रभु की आराधना और कामवासना ये दोनों एकसाथ एक स्थान पर नहीं रह सकते जैसे कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह पातीं। श्री सत्गुरु का यह उपदेश अपने हृदय में धारण कर और उसका कहीं भी, कभी भी अभिमान मत करना। भूधरदास कहते हैं कि मृत्यु तो एक दिन अवश्य आयेगी ही, तू एक पल के लिए भी प्रभु के स्मरण-भजन से च्युत न होना अर्थात् प्रभु विस्मरण मत करना।

(५७)

राग सोरठ

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया॥ टेक॥
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पिछताया॥

आपा तनक दिखाय बीज ज्यों, मूढमती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनौं, अन्त नरक पहुंचाया॥ १॥ सुनि.॥

केते कंत किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किसहीसौं नहिं प्रीति निबाही; वह तजि और लुभाया॥ २॥ सुनि.॥

'भूधर' छलत फिरै यह सबकों, भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनीकों ठग बैठे, मैं तिसको सिर नाया॥ ३॥ सुनि.॥

हे मानव, सुनो, यह माया (धन) ठगनी है, इसने सारे जगत को ठग लिया है। जिस किसी ने भी इस पर विश्वास किया, वह मूरख बनकर पछताया है। बिजली-सी चमक को देखकर जो मूर्ख लालच में आ गया, उसको मदांध कर इसने धर्मच्युत कर दिया और फिर अन्त में उसे नरक में पहुँचा दिया। इस माया ने कितने लोगों को अपना स्वामी बनाया किन्तु फिर भी इसका मन नहीं भरा। इसने किसी से भी अपनी प्रीति नहीं निभाई, यह सदैव एक को छोड़कर दूसरे को लुभाती रही है।

भूधरदास कहते हैं कि माया सबको छलती-फिरती है, जिसने इस पर विश्वास किया, उसी को यह ठगती रही है, सारे जगत को भौंदू बना रही है। जिसने इस ठगिनी माया को जीत लिया है, मैं उसे नमन करता हूँ।

माया = धन-वैभव, लक्ष्मी। कंत = पति।

(५८)

राग सोरठ

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखन की बार भरै दृग, मरि है मूरख रोय ॥

किंचित् विषयनि सुख के कारण, दुर्लभ देह न खोय।
ऐसा अवसर फिर न मिलैगा, इस नींदड़ी न सोय ॥ १ ॥ अज्ञानी. ॥

इस विरियां मैं धर्म-कल्प-तरु, सींचत स्याने लोय।
तू विष बोवन लागत तो सम, और अभागा कोय ॥ २ ॥ अज्ञानी. ॥

जे जगमें दुखदायक बेरस, इस हीके फल सोय।
यों मन 'भूधर' जानिकै भाई, फिर क्यों भोंदू होय ॥ ३ ॥ अज्ञानी. ॥

हे अज्ञानी! तू पापरूपी धतूरा का विष-वृक्ष मत बो। जब इसके फल चखने का समय आता है तो दु:खी होकर आँसू बहाता हुआ मरता है। जो दुर्लभ नर काया/मनुष्य देह मिली है उसे थोड़े से विषयों के सुख के कारण मत गँवा, ऐसा सुअवसर मनुष्य-भव फिर नहीं मिलेगा अत: प्रमाद की नींद में मत सो। जो सयाने/बुद्धिमान लोग हैं वे तो इस अवसर में अर्थात् मनुष्य जन्म पाकर धर्मरूपी कल्पवृक्ष को सींचते हैं और यदि तू अधर्म (पाप) के विषवृक्ष को बोता है तो तेरे समान अभागा दूसरा कौन होगा? जगत में जितने दु:खदायक रसविहीन फल हैं, वे पाप-कर्म के ही फल हैं। भूधरदास कहते हैं कि यह जानकर भी तू मूर्ख अर्थात् भोंदू क्यों हो रहा है?

(१९)

राग पालू

पानी में मीन पियासी, मोहे रह-रह आवे हांसी रे॥

ज्ञान बिना भव-बन में भटक्यो, कित जमुना कित काशी रे॥ १॥ पानी.॥

जैसे हरिण नाभि किस्तूरी, वन-वन फिरत उदासीरे॥ २॥ पानी.॥

'भूधर' भरम जाल को त्यागो, मिट जाये जम की फांसी रे॥ ३॥ पानी.॥

पानी में रहकर भी मछली प्यासी है, ऐसा देख-देखकर मुझे हँसी आती है। अर्थात् जीव स्वयं ज्ञानवान होने पर भी उससे अनजान बना हुआ है और उसे बाहर खोजता है।

ज्ञान के बिना अज्ञानी होकर वह संसाररूपी जंगल में भटक रहा है, कभी जमुना नदी की ओर तो कभी काशी को, परन्तु वह आत्मज्ञान के तीर्थस्थान के महत्व को नहीं समझ रहा।

जैसे हरिण की नाभि में 'कस्तूरी' होती है परन्तु वह यह तथ्य न जानने के कारण उससे अनभिज्ञ होकर जंगल-जंगल घूमकर उस सुगन्ध की तलाश करता रहता है।

भूधरदास कहते हैं कि यह भ्रम है, इसे छोड़ो, अपने को जानो तो जन्म-जन्मान्तर में लगनेवाली यमराज की फाँसी से अर्थात् जन्म-मरण से छुटकारा हो सकता है।

(६०)

ऐसी समझके सिर धूल ॥ टेक ॥
धरम उपजन हेत हिंसा, आचरैं अघमूल ॥
छके मत-मद पान पीके रहे मनमें फूल।
आम चाखन चहैं भोंदू, बोय पेड़ बबूल ॥ १ ॥ ऐसी. ॥
देव रागी लालची गुरु, सेय सुखहित भूल।
धर्म नगकी परख नाहीं, भ्रम हिंडोले झूल ॥ २ ॥ ऐसी. ॥
लाभ कारन रतन विणजै, परखको नहिं मूल।
करत इहि विधि वणिज 'भूधर', विनस जै है मूल ॥ ३ ॥ ऐसी. ॥

जो कोई धर्म-कार्य हेतु हिंसा का आचरण करता है, जिसने ऐसा किया है, तथा जो इसे उचित समझता है ऐसा आचरण, ऐसी समझ तिरस्कार करने योग्य है, यह तो पाप का मूलकारण है।

मदिरा (शराब) पीकर जो अपने मन में फूले नहीं समा रहे हैं, मदोन्मत हो रहे हैं, उनके परिणाम भले कैसे होंगे? जो आम खाना चाहे और पेड़ बबूल का बोये तो उसको आम कहाँ/कैसे मिलेंगे ?

राग-द्वेष से युक्त देवों की, लोभ और लालच से भरे गुरुओं की (अर्थात् जो देव राग-द्वेषसहित हो, जो गुरु लालच और लोभ से भरा हो, उनकी) अपने भले के लिए सेवा करना भूल है, इससे स्पष्ट है कि उसे धर्मरूपी रत्न की पहचान नहीं है और भ्रम के झूले में इधर-उधर डोल रहा है।

भूधरदासजी कहते हैं धन-लाभ के लिए रत्नों का व्यापार/वाणिज्य किया जाता है, पर जिसे रत्नों की पहचान नहीं है यदि वह व्यापार करेगा तो उसका तो मूल से ही नाश होना निश्चित है। अर्थात् धर्म के सिद्धान्तों को न जानकर विवेकहीन क्रियाओं को धार्मिक क्रिया मानकर करने से हानि ही होगी लाभ नहीं।

(६१)

राग सोरठ

चित! चेतनकी यह विरियां रे॥ टेक॥
उत्तम जनम सुनत तरूनापौ, सुजत बेल फल फरियां रे॥

लहि सत-संगतिसौं सब समझी, करनी खोटी खरियां रे।
सुहित संभा शिथिलता तजिकै, जाहैं बेली झरियां रे॥ १॥ चित.॥

दल बल चहल महल रूपेका, अर कंचनकी कलिया रे।
ऐसी विभव बढ़ीकै बढ़ि है, तेरी गरज क्या सरियां रे॥ २॥ चित.॥

खोय न वीर विषय खल साटैं, ये कोरन की घरियां रे।
तोरि न तनक तगा हित 'भूधर', मुकताफलकी लरियां रे॥ ३॥ चित.॥

हे चेतन! जरा चिंतवन करो, यह मनुष्य जन्म एक सुअवसर है, समय है। सुनो, उत्तम जन्म पाया है, यौवन पाया है, जिसमें कुलीनवंश की सन्ततिरूप फल-फूल खिल रहे हैं।

जब सुयोग से सत्संगति मिली तब ही अपने किए के अच्छे-बुरे की समझ हुई। अपने हित के लिए गोष्ठी, प्रमाद व ढिलाई को तजते ही आत्मीयता के निर्झर फूटने लगते हैं। समाज, बल, आनंद, महल, सम्पति, रुपया, सोने की कलियाँ आदि सभी वैभव निरंतर बढ़ते जावें तो उससे तेरे किस प्रयोजन की सिद्धि होगी!

हे वीर पुरुष! तू विषयरूपी खल के बदले करोड़ों रुपये के मूल्य का समय - अनमोल समय मनुष्य-जन्म मत खो अर्थात् दुष्ट विषयों के लिए अपने अनमोल बहुमूल्य समय को मत खो। भूधरदास कहते हैं कि तू धागे के लिए (धागा पाने के लिए) मोती की माला को मत तोड़।

बिरिया = समय। सुजत = कुलीन। संभा - गोष्ठी। शिथिलता - ढीलापन। झरिया = आत्मीयता का सम्बोधन। चहल = आनन्द। साटैं = बदले में। कोरन = करोड़ों की। तगा = धागा। लड़ी = माला।

(६२)

राग ख्याल

गरव नहिं कीजै रे, ऐ नर निपट गंवार ॥ टेक ॥

झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजै रे ॥ १ ॥ गरव. ॥

कै छिन सांझ सुहागरु जोबन, कै दिन जगमें जीजै रे ॥ २ ॥ गरव. ॥

बेगा चेत विलम्ब तजो नर, बंध बढ़ै थिति छीजै रे ॥ ३ ॥ गरव. ॥

'भूधर' पलपल हो है भारो, ज्यो ज्यो कमरी भीजै रे ॥ ४ ॥ गरव. ॥

हे अज्ञानी मनुष्य! तू गर्व मत कर, यह तेरी देह अविश्वसनीय है/अस्थिर है/क्षणिक है, तेरी धन-सम्पत्ति सब अविश्वसनीय/अस्थिर है, क्षणिक है। सब छाया के समान अस्थायी है। संध्या, सुहाग और यौवन जगत में कितने दिन, कितने समय तक रहता है? तुझे जगत में कितने दिन जीना है? तू बिना देरी किए जल्दी ही अब चेत। बंधन बढ़ते जाते हैं और आयु छीजती चली जा रही है। समय बीतता जा रहा है। भूधरदास कहते हैं कि जैसे ज्यों-ज्यों कंबल भीगता जाता है त्यों-त्यों उसका भार बढ़ता जाता है। वैसे ही ज्यों-ज्यों उमर/आयु बीतती जाती है त्यों-त्यों प्रतिपल कर्मों का भार बढ़ता जाता है।

(६३)

राग सोरठ

बीरा! थारी बान परी रे, बरज्यो मानत नाहिं ॥ टेक ॥

विषय-विनोद महा बुरे रे, दुख दाता सरवंग।
तू हटसौं ऐसै रमै रे, दीवे पड़त पतंग ॥ १ ॥ बीरा. ॥

ये सुख है दिन दोयके रे, फिर दुख की सन्तान।
करै कुहाड़ी लेइकै रे, मति मारै पग जानि ॥ २ ॥ बीरा. ॥

तनक न संकट सहि सकै रे! छिनमें होय अधीर।
नरक विपति बहु दोहली रे, कैसे भरि है वीर ॥ ३ ॥ बीरा. ॥

भव सुपना हो जायेगा रे, करनी रहेगी निदान।
'भूधर' फिर पछतायगा रे, अबही समुझि अजान ॥ ४ ॥ बीरा. ॥

भाई! तेरी आदत बुरी हो गई है, तू मना करने पर भी मानता नहीं है।

ये विषयों के खेल बहुत बुरे हैं, ये सब तरह से दुःख देनेवाले हैं और तू इनमें ऐसे मस्त हो गया है जैसे दीये (दीपक) को देखकर पतंगा मस्त हो जाता है और उसमें आकर पड़ जाता है, जल जाता है, मर जाता है।

ये विषय-सुख दो दिन के हैं, फिर इनका जो परिणाम होगा वह दुःख ही होगा। जरा समझ और अपने ही हाथ में कुल्हाड़ी लेकर अपने पाँव पर ही मत मार।

दुःख, वेदना तो तू तनिक भी सहन नहीं कर पाता, क्षणभर में ही विचलित हो जाता है, धैर्यहीन हो जाता है। हे भाई! नरक के दुःख अत्यन्त कठिन, दुःसाध्य, दुःखदायी हैं। उन्हें कैसे सहन करेगा?

यह अवसर बीत जाने पर मनुष्य-जीवन एक स्वप्न के समान हो जायेगा और कुछ किए जाने की अभिलाषा - इच्छा ही शेष रह जायगी। भूधरदास कहते हैं कि अरे अज्ञानी, अब भी समझ अन्यथा तुझे पछताना पड़ेगा।

बान = आदत, स्वभाव।

(६४)

जकड़ी

अब मन मेरे वे!, सुनि सुनि सीख सयानी।
जिनवर चरना वे!, करि करि प्रीति सुज्ञानी॥

करि प्रीति सुज्ञानी! शिवसुखदानी, धन जीतव है पंचदिना।
कोटि बरष जीवौ किस लेखे, जिन चरणांबुजभक्ति बिना॥
नर परजाय पाय अति उत्तम, गृह वसि यह लाहा ले रे!।
समझ-समझ बोलैं गुरुज्ञानी, सीख सयानी मन मेरे॥ १॥

तू मति तरसै वे!, सम्पति देखि पराई।
बोये लुनि ले वे!, जो निज पूर्व कमाई॥

पूर्व कमाई सम्पति पाई, देखि देखि मति झूर मरै।
बोय बँबूल शूल-तरु भोंदू!, आमनकी क्या आस करै।
अब कछु समझ-बूझ नर तासों, ज्यों फिर परभव सुख दरसै।
करि निजध्यान दान तप संजम, देखि विभव पर मत तरसै॥ २॥

जो जग दीसै वे!, सुन्दर अरु सुखदाई।
सो सब फलिया वे!, धरमकल्पद्रुम भाई॥

सो सब धर्म कल्पद्रुमके फल, रथ पायक बहु ऋद्धि सही।
तेज तुरंग तुंग गज नौ निधि, चौदह रतन छखण्ड मही॥
रति उनहार रूपकी सीमा, सहस छ्यानवै नारि वरै।
सो सब जानि धर्मफल भाई! जो जग सुंदर दृष्टि परै॥ ३॥

लगैं असुंदर वे!, कंटक वान घनेरे।
ते रस फलिया वे!, पाप कनक-तरु केरे॥

ते सब पाप कनकतरुके फल, रोग सोग दुख नित्य नये।
कुथित शरीर चीर नहिं तापर, घर घर फिरत फकीर भये॥
भूख प्यास पीड़ैं कन मांगै, होत अनादर पग पगमें।
ये परतच्छ पाप संचित फल, लगैं असुंदर जे जगमें॥ ४॥

इस भव वनमें वे!, ये दोऊ तरु जाने।
जो मन माने वे!, सोई सींचि सयाने॥
सींचि सयाने! जो मन माने, वेर वेर अब कौन कहै।
तू करतार तुही फल-भोगी, अपने सुख दुख आप लहै॥
धन्य! धन्य! जिन मारग सुंदर, सेवन जोग तिहूँपनमें।
जासों समुझि परै सब 'भूधर', सदा शरण इस भव-वनमें॥५॥

ए मेरे मन! तू यह विवेकपूर्ण सीख सुन।

हे ज्ञानी। श्री जिनवर के चरणों के प्रति तू प्रीति कर, उनमें रम जा।

हे सुज्ञानी! तू भक्ति कर। वह मोक्ष-सुख को देनेवाली है। यह भव-सम्पत्ति, यह जीवन पाँच दिनों का है, कुछ ही काल का है। जिनेन्द्र के चरण-कमलों की भक्ति बिना यदि करोड़ों वर्ष भी जीवे तो उसका क्या प्रयोजन? यह अति उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर अपने अन्तर में रहने का लाभ ले। अत्यन्त अनुभव के पश्चात् श्री गुरु ने विवेकपूर्ण सीख दी है, उसे ग्रहण कर।

अन्य की संपत्ति को देखकर तू ललचा मत, पूर्व में जो तूने बोया है वही (फसल) काटने होंगे। तूने जो किया तुझे उस ही का फल तो मिलेगा। जो तूने पहले कमाई की, उसके फलस्वरूप तूने जो संपत्ति पाई उसको देख-देखकर दुःख क्यों करता है, दुःखी होकर क्यों मरता है? काँटों से युक्त बबूल बोकर के तू आम की आशा कैसे करता है? हे मनुष्य! अब भी यदि तू कुछ समझ सके तो तुझे पर-भव में सुख के दर्शन हो सकेंगे। तू अपने स्वभाव का ध्यान कर, दान कर, तप कर, संयम का पालन कर। अन्यजनों के वैभव को देखकर मत तरस अर्थात् तृष्णा मत कर, ईर्ष्या मत कर।

जगत में जो सुंदर और सुखदायी दिखाई देता है वे सब धर्मरूपी कल्पवृक्ष के फल हैं। तेज दौड़नेवाले घोड़े, ऊँचे-ऊँचे हाथी, नौ निधि, चौदह रत्न, छः खण्ड पृथ्वी, रति से भी अधिक सुन्दर स्त्रियाँ, छियानवे हजार नारियाँ, ये सब धर्म के फलस्वरूप हैं और जगत में काँटों की बाढ़ से घिरा, जो असुन्दर लगता

है वह सब पापरूपी धतूरे के वृक्ष के रस से सने परिणाम हैं; उसके फलस्वरूप नित्य नए रोग, शोक, सन्ताप, दुःख होते हैं। दोषयुक्त शरीर, वस्त्रहीन, घर-घर माँगता फकीर, भूख-प्यास की पीड़ा से व्याकुल होकर मुट्ठी-भर अनाज की याचना और पद-पद पर दुत्कारा जाना, तिरस्कृत होना ये सब पूर्वसंचित पाप कर्मों के प्रत्यक्ष परिणाम हैं, ये जगत में असुंदर, बुरे, असुहावने लगते हैं।

इस संसार में ये दो ही प्रकार के वृक्ष हैं - धर्मवृक्ष और अधर्मवृक्ष। जिसे तेरा मन माने, तू उसे ही सींच। अब तुझे बार-बार कौन कहे! तू ही कर्त्ता है, तू ही भोक्ता है, तू ही उसके परिणामस्वरूप सुख-दुःख भोगता है।

भूधरदास कहते हैं जिनेन्द्र का बताया हुआ मार्ग तीनों लोक में सुन्दर है, सेवन करने योग्य है। वह धन्य है जिसको यह समझ आ जाये क्योंकि इस संसाररूपी वन में यह (जिनेन्द्र का मार्ग) ही एकमात्र शरण है, सदैव शरण है।

लाहा = लाभ। लुनि - (फसल) काटना।

(६५)

राग काफी

मन हंस! हमारी लै शिक्षा हितकारी!
श्रीभगवान चरन पिंजरे वसि, तजि विषयनिकी यारी॥

कुमति कागलीसौं मति राचो, ना वह जात तिहारी।
कीजै प्रीत सुमति हंसीसौं, बुध हंसनकी प्यारी॥ १॥ मन.॥

काहेको सेवत भव झीलर, दुखजलपूरित खारी।
निज बल पंख पसारि उड़ो किन, हो शिव सरवरचारी॥ २॥ मन.॥

गुरुके वचन विमल मोती चुन, क्यों निज वान विसारी।
ह्वै है सुखी सीख सुधि राखें, 'भूधर' भूलैं ख्वारी॥ ३॥ मन.॥

हे हंसरूपी मन, हे हंस के समान मन, हमारी हितकारी शिक्षा ले।

तू विषय-कषाय की रुचि छोड़ दे और प्रभु के चरणकमलरूपी पिंजरे में अपना निवास कर, अर्थात् भगवान के श्रीचरणों में मन लगा, उन्हीं में रम जा। जैसे पक्षी पिंजरे से बाहर नहीं आता, उसी प्रकार तू चरण-कमल के अलावा अन्यत्र अपना ध्यान न लगा।

हे हंस! कुमति - कौवे की भाँति है, वह तेरी जाति की नहीं है, उसमें अपना मन मत लगा। तू सुमतिरूपी हंसिनी से प्रीति कर जो ज्ञानी हंसों के मन को भाती है, प्यारी लगती है।

तू इस भवरूपी झील में, जो दु:खरूपी खारे जल से भरी है, क्यों पड़ा है? तू तो मुक्तिरूपी सरोवर का निवासी है, तू अपने पंख पसारकर अपने पुरुषार्थ से उड़कर वहाँ क्यों नहीं जाता! हे हंस! तू सदगुरु के पवित्र उपदेश के वचनरूपी मोती चुन। उन्हें न चुनकर तू अपना मोती चुगने का स्वभाव क्यों छोड़ रहा है! (मोती चुगना हंस का स्वभाव है)। भूधरदास कहते हैं - तू इस सीख को ध्यान में रखे तो तेरे सारे दुख मिट जायेंगे, समाप्त हो जायेंगे।

हंस = नीर-क्षीर विवेकी, बुद्धिमान पक्षी।

(६६)

राग धनासरी

सो मत सांचो है मन मेरे॥
जो अनादि सर्वज्ञप्ररूपित, रागादिक बिन जे रे॥

पुरुष प्रमान प्रमान वचन तिस, कलापेत जान अने रे।
राग दोष दूषित तिन बायक, सांचे हैं हित तेरे॥ १॥ सो मत.॥

देव अदोष धर्म हिंसा बिन, लोभ बिना गुरु वे रे।
आदि अन्त अविरोधी आगम, चार रतन जहं ये रे॥ २॥ सो मत.॥

जगत भर्‌यो पाखंड परख विन, खाइ खता बहुतेरे।
'भूधर' करि निज सुबुद्धि कसौटी, धर्म कनक कसि ले रे॥ ३॥ सो मत.॥

मेरे मन में वह ही मत (धर्म) सच्चा है जो राग-द्वेष रहित है, जो अनादि से चला आ रहा है और सर्वज्ञ-भाषित है/सर्वज्ञ द्वारा बताया गया है।

हे प्राणी! प्रमाण पुरुष के वचन ही हितकारी व सत्य हैं। अन्य कथन जो राग-द्वेष से दूषित हैं वे मात्र कल्पना हैं, ऐसा जानो।

राग-द्वेषरहित देव, हिंसारहित अहिंसा का प्रतिपादन करनेवाला धर्मशास्त्र, लोभरहित गुरु और आदि से अन्त तक विरोधरहित आगम शास्त्र - ये चार रत्न धर्म के आधार हैं।

यह जगत पाखंडों से भरा हुआ है, इसकी परख जिसने नहीं की उसने बहुत धोखा खाया है। भूधरदास कहते हैं कि हे प्राणी! विवेक की कसौटी पर धर्मरूपी स्वर्ण को परखकर, कसकर, उसी यथार्थता को जानो।

अने - अन्य।

(६७)

राग ख्याल

मन मूरख पंथी, उस मारग मति जाय रे॥ टेक॥
कामिनि तन कांतार जहां है, कुच परवत दुखदाय रे॥

काम किरात बसै तिह थानक, सरवस लेत छिनाय रे।
खाय खता कीचक से बैठे, अरु रावनसे राय रे॥ १॥ मन॥

और अनेक लुटे इस पैंडे, वरनैं कौन बढ़ाय रे।
वरजत हों वरज्यौ रह भाई, जानि दगा मति खाय रे॥ २॥ मन॥

सुगुरु दयाल दया करि 'भूधर', सीख कहत समझाय रे।
आगै जो भावै करि सोई, दीनी बात जताय रे॥ ३॥ मन॥

ओ मन! ओ कुमार्ग पर चलनेवाले मूर्ख, तू कामवासना के पथ पर मत जा। नारी-शरीररूपी जंगल में नारी-शरीर का सौन्दर्य (स्तन) पर्वत के समान महान दु:खदायी है। अर्थात् शारीरिक सौन्दर्यरूपी जंगल में पर्वतरूपी अनेक कष्ट हैं। कामरूपी किरात (भील) राक्षस जिसके हृदय में बसता है, वह उसका सर्वस्व छीन लेता है। कीचक और रावण राजा होते हुए भी ऐसी गलती कर बैठे और फिर उसका दुखद परिणाम भुगते और भी अनेक जन इस वन में कैसे अपना सर्वस्व लुटा बैठे उसका वर्णन कौन करे? तू उससे बच रहा है अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है तो बचा हुआ ही रह, जान-बूझकर तू धोखा मत खाना।

भूधरदास कहते हैं कि दयालु सुगुरु दया करके यह सीख दे रहे हैं, समझा रहे हैं। आगे तेरी समझ में आवे जो कर, तुझे जो बात बतानी थी वह बता दी है कि तू उस पथ पर मत जा।

कांतार - वन, बियाबान जंगल। खता - गलती। पैंडे = इस कारण।

(६८)

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय, बृथा क्यों खोवत हो॥ टेक॥

कठिन, कठिन कर नरभव भाई, तुम लेखी आसान।
धर्म विसारि विषयमें राचौ, मानी न गुरुकी आन॥ १॥ बृथा.॥

चक्री एक मतंगज पायो, तापर ईंधन ढोयो।
बिना विवेक [illegible] मतिही का, पाय सुधा पग धोयो॥ २॥ बृथा.॥

काहू शठ चिन्तामणि पायो, मरम न जानो ताय।
बायस देखि उदधिमें फैंक्यो, फिर पीछे पछताय॥ ३॥ बृथा.॥

सात विसन आठों मद त्यागो, करुना चित्त विचारो।
तीन रतन हिरदैमें धारो, आवागमन निवारो॥ ४॥ बृथा.॥

'भूधरदास' कहत भविजनसों, चेतन अब तो सम्हारो।
प्रभुको नाम तरन-तारन जपि, कर्म फन्द निरवारो॥ ५॥ बृथा.॥

हे श्रावक! तुमको ऐसा उत्तम श्रावक कुल मिला है, उसे तुम क्यों बेकार/निष्प्रयोजन ही खो रहे हो?

यह नरभव पाना अत्यन्त कठिन है, तुम इसे (पाना) इतना सहज समझ बैठे हो! गुरु की शिक्षा को नहीं मान रहे और धर्म को छोड़कर विषयों में रुचि लगा रहे हो!

चक्रवर्ती होकर हाथी तो पाया, परन्तु उसका उपयोग ईंधन ढोने में किया। इसी प्रकार बुद्धिहीन को अमृत मिला, उसने बिना विवेक, बिना बुद्धि के उसका उपयोग पग धोने में किया अर्थात् जो कुछ मिला उसका समुचित उपयोग नहीं किया।

जैसे किसी मूर्ख को चिन्तामणि रत्न मिला, परन्तु उसका महत्व नहीं जाना और कौवे को देखकर, उसे उड़ाने हेतु वह रत्न फेंक दिया, वह रत्न समुद्र में जा गिरा तो फिर पछताने लगा।

हे श्रावक! सात व्यसन और आठ मद का त्याग करो। हृदय में करुणाभाव धारण करो। रत्नत्रय को हृदय में धारण करो अर्थात् रत्नत्रय का भावसहित निर्वाह कर जन्म-मरण से मुक्त हो।

भूधरदास भव्यजनों से कहते हैं कि अरे चेतन! अब तो अपने को संभालो। प्रभु का नाम ही इस संसार-समुद्र से तिराकर उद्धार करनेवाला है, उसको जपकर कर्म-जंजाल से मुक्त होवो।

(६९)

जीवदया व्रत तरु बड़ो, पालो पालो बड़भाग ॥ टेक ॥

कीड़ी कुंजर कुंथुवा, जेते जग-जन्त।
आप सरीखे देखिये, करिये नहिं भन्त ॥ १ ॥ जीवदया. ॥

जैसे अपने हीयडे, प्यारे निज प्रान।
त्यों सबहीकों लाड़िले, निहचै यह जान ॥ २ ॥ जीवदया. ॥

फांस चुभै दुक देहमें, कछु नाहिं सुहाय।
त्यों परदुखकी वेदना, समझो मन लाय ॥ ३ ॥ जीवदया. ॥

मन वचसौं अर कायसौं, करिये परकाज।
किसहीकों न सताइये, सिखवैं रिखिराज ॥ ४ ॥ जीवदया. ॥

करुना जगकी मायड़ी, धीजै सब कोय।
धिग! धिग! निरदय भावना, कंपैं जिय जोय ॥ ५ ॥ जीवदया. ॥

सब दंसण सब लोयमें, सब कालमँझार।
यह करनी बहु शंसिये, ऐसो गुणसार ॥ ६ ॥ जीवदया. ॥

निरदै नर भी संस्तुवै, निंदै कोइ नाहिं।
पालैं विरले साहसी, धनि वे जगमांहि ॥ ७ ॥ जीवदया. ॥

पर सुखसौं सुख होय, पर-पीड़ासौं पीर।
'भूधर' जो चित्त चाहिये, सोई कर वीर! ॥ ८ ॥ जीवदया. ॥

हे भाग्यवान, पुण्यवान जीवो! जीवों के प्रति दया करना एक विशाल वृक्ष की भाँति है, उसका पालन करना। चींटी, हाथी, कुंथु आदि जगत के जितने भी प्राणी हैं, उन्हें आप अपने जैसा प्राणी ही जानिए, उनमें भेद-अन्तर मत कीजिए।

जैसे आपको अपने प्राण प्यारे लगते हैं वैसे ही सबको अपने-अपने प्राण प्यारे हैं-ऐसा तू निश्चय से जान।

तनिक-सी फाँस-काँटा यदि शरीर के किसी भी अंग में चुभ जाय, तो वह असुहावना लगता है। इसीप्रकार दूसरों के, पर के दु:ख की वेदना भी अपने मन में समझो, अनुभव करो। श्री गुरुराज यही शिक्षा देते हैं कि किसी भी जीव को मत सताओ और मन-वचन-काय से अपने से भिन्न अन्यजनों के प्रति दया-भाव रखिए, परोपकार कीजिए, उनके दु:ख-निवारण में सहयोगी बनिये।

करुणा जगत की माता है, जिस पर सबका भरोसा है। धिक्कार है उस निर्दय भावना को जिसे देखकर जीव सिहर उठता है, काँप जाता है।

सब लोकों में, सभी कालों में और इस संसार के सभी दर्शनों में करुणा के प्रशंसक सराहे जाते हैं। यह गुणों का सार है। निर्दयी पुरुष भी करुणा की स्तुति करते हैं। उसकी निंदा कोई नहीं करता। परन्तु वे बिरले साहसी पुरुष हैं जो इसका पालन करते हैं, वे जगत में धन्य हैं। भूधरदास कहते हैं कि दूसरे के सुख में सुखी होता है वैसे ही दूसरे के दु:ख में पीड़ा का अनुभव कर। हे वीर! तू अपने मन के अनुकूल कार्य कर।

भंत - भ्रान्ति। हियड़े = मन में, हृदय में। मायड़ी = माता। धीजै - विश्वास, धीरज। कुंथु = केंचुआ जैसा एक छोटा-सा जन्तु।

(७०)

राग-बिलावल

सब विधि करन उतावला, सुमरनकौं सीरा॥ टेक॥
सुख चाहै संसारमैं, यों होय न नीरा॥

जैसे कर्म कमावे है, सो ही फल वीरा!
आम न लागै आकके, नग होय न हीरा॥ १॥ सब विधि.॥

जैसा विषयनिकों चहै न रहै छिन धीरा।
त्यों 'भूधर' प्रभुकों जपै, पहुंचै भव तीरा॥ २॥ सब विधि.॥

हे मनुष्य! तू और सब कार्य करने के लिए तो अत्यन्त उतावला व अधीर रहता है, परन्तु प्रभु स्मरण के लिए आलसी अर्थात् ढीला व सुस्त रहता है। यदि संसार में सुख चाहता है तो तू इस प्रकार अज्ञानी/अविवेकी मत बन।

तू जैसे कार्य करेगा, उसके अनुसार ही तुझे फल प्राप्त होंगे। आकड़े के पेड़ में आम के फल कभी नहीं लगते और न सभी नग (पत्थर) हीरा होते हैं। तू जिसप्रकार विषयों को चाहता है और उनके लिए एक क्षण भी धैर्य धारण नहीं करता, यदि उसीप्रकार उतनी ही उत्सुकता से तू प्रभु का नाम जपे तो शीघ्र ही इस भवसागर के पार पहुँच जाय।

सीरा - सुस्त, ठण्डा, शीतल। नीरा (निरा) = निपट, अज्ञानी, कोरा।

(७१)

राग बंगला

आयो रे बुढ़ापो मानी, सुधि बुधि बिसरानी ॥ टेक ॥

श्रवन की शक्ति घटी, चाल चालै अटपटी,
देह लटी, भूख घटी, लोचन झरत पानी ॥ १ ॥ आया रे. ॥

दांतनकी पंक्ति टूटी, हाड़नकी संधि छूटी,
कायाकी नगरि लूटी, जात नहिं पहिचानी ॥ २ ॥ आया रे. ॥

बालोंने बरन फेरा, रोगने शरीर घेरा,
पुत्रहू न आवे नेरा, औरोंकी कहां कहानी ॥ ३ ॥ आया रे. ॥

'भूधर' समुझि अब, स्वहित करैगो कब,
यह गति ह्वै है जब, तब पिछतै है प्राणी ॥ ४ ॥ आया रे. ॥

वृद्धावस्था आने पर कवि कहता है कि हे अभिमानी! अब बुढ़ापा आ गया है, जिसमें संभाल व समझ दोनों ही विस्मरित हो जाते हैं, डगमगा जाते हैं। अब कानों से कम सुनाई देने लगा है, सुनने की शक्ति घट गई है; पाँव लड़खड़ाने लगे हैं, संभलते नहीं हैं, देह साथ छोड़ने लगी है, भूख घट गई है और आँखों से पानी बहने लगा है। दाँतों की पंक्ति टूट गई है, हड्डियों के जोड़ ढीले होने लगे हैं, शरीर का ढाँचा - उसका रूप-सौन्दर्य बिगड़ने लगा है, वह अब पहचाना नहीं जाता है। बालों का रंग बदल गया है, वे (काले से) सफेद हो गए हैं, शरीर में भाँति-भाँति के रोग प्रकट होने लगे हैं, ऐसे में पुत्र भी समीप नहीं आता, औरों के बारे में तो क्या कहें?

भूधरदास कहते हैं कि दूसरों की वृद्धावस्था को देखकर तो समझो, तुम अपना हित कब करोगे? जब शरीर की यह स्थिति हो जाती है तब प्राणी पछताता है पर तब पछताने से क्या हो?

(७२)

राग आसावरी

चरखा चलता नाहीं (रे) चरखा हुआ पुराना (वे)॥

पग खूंटे दो हालन लागे, उर मदरा खखराना।
छीदी हुई पांखड़ी पांसू, फिरै नहीं मनमाना॥ १॥

रसना तकलीने बल खाया, सो अब कैसै खूटै।
शब्द-सूत सूधा नहिं निकसे, घड़ी-घड़ी पल-पल टूटै॥ २॥

आयु मालका नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहे, वैद बाढ़ई हारे॥ ३॥

नया चरखला रंगा-चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखैं नहिं भावै॥ ४॥

मोटा महीं कातकर भाई!, कर अपना सुरझेरा।
अंत आग में ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सवेरा॥ ५॥

चरखा अर्थात् देह अब चलती नहीं है, चरखा (यह देह/शरीर) पुराना हो गया है, अर्थात् बुढ़ापा आ गया है। चरखे के दोनों डंडे जिनके बीच में चरखे का पहिया होता है, अब हिलने लगे हैं, अर्थात् इस देह के दोनों पाँव अब शिथिल हो गए हैं, डगमगाने लगे हैं। चरखा पुराना हो जाने से उसकी कीली भी घिस गई है, अब वह चलने पर आवाज करता है, उसी प्रकार देह में जमे कफ की खँखार होने लगी है। चरखे की पाँखड़िया ढीली हो गई हैं, चरखे का स्वचालन कम हो गया है अर्थात् देह का घूमना-फिरना कम हो गया है।

इस रसना-जीभरूपी तकली में टेढ़ापन, ऐंठन, आ गई अर्थात् जीभ सूखने लगी है, अब वह निर्बलता कैसे कम हो? शब्दरूपी सूत सीधा नहीं निकलता, बुढ़ापे के कारण जबान तुतलाने लगती है, अस्पष्ट हो जाती है, बीच-बीच में अवरुद्ध हो जाती है, जैसे चरखे का सूत टूटता जाता है। देह की जीर्णता के कारण

यह श्वास-आयुरूपी माल (चरखे की डोरी जिसके सहारे चरखा घूमता है) का भी भरोसा नहीं है। सारे अवयव कहीं जड़ता से तो कहीं कंपन से ग्रस्त हैं। अब चरखे को/शरीर को रोज इलाज व मरम्मत की आवश्यकता होने लगी है, उसका इलाज करते-करते वैद्यरूपी बढ़ई भी हारने लगा है, थक गया है।

नए चरखे की भाँति स्वस्थ-सुंदर देह सबके मन को आकर्षित करती है, पर यहाँ अब वे पहले के गुण तो सब पलट गए हैं, नष्ट हो गये हैं। ये (पलटा हुआ) रूप अब अच्छा नहीं लगता। रंग बदल गया। अब तो जो कुछ शेष है उसे इस जर्जर चरखे से (देह से) मोटा या बारीक जैसा भी काता जा सके कातकर अपना जीवन व्यतीत करो, क्योंकि अंतत: तो चरखे की लकड़ी ईंधन के काम आयेगी, जलाई जायेगी अर्थात् यह देह भी अग्नि को समर्पित हो जावेगी। भूधरदास कहते हैं कि इस प्रकार समझे तभी सवेरा है, तभी बोध का होना है।

(७३)

राग श्रीगौरी

काया गागरि, जोजरी, तुम देखो चतुर विचार हो॥ टेक॥
जैसे कुल्हिया कांचकी, जाके विनसत नाहीं वार हो॥

मांसमयी माटी लई अरु, सानी रुधिर लगाय हो।
कीन्हीं करम कुम्हारने, जासों काहूकी न वसाय हो॥ १॥ काया.॥

और कथा याकी सुनौ, दशैं अथ उरध दश ठेह हो।
जीव सलिल तहां थंभ रह्यौ भाई, अद्भुत अचरज येह हो॥ २॥ काया.॥

यासौं ममत निवारकैं, नित रहिये प्रभु अनुकूल हो।
'भूधर' ऐसे ख्यालका भाई, पलक भरोसा भूल हो॥ ३॥ काया.॥

हे चतुर! जरा विचार करो और देखो यह कायारूपी गागर जर्जरित हो रही है, इसकी स्थिति काँच के पात्र की-सी है जिसे नष्ट होने में जरा भी देर नहीं लगती।

मांसमयी मिट्टी को रक्त से सानकर कर्मरूपी कुम्हार ने इसे बनाया है जिसमें किसी का भी स्थिर निवास नहीं होता। इसकी एक कथा और सुनो, इसमें ऊपर-नीचे दश द्वार हैं जिसमें जीव-जल ठहरा हुआ है, यह एक विचित्र आश्चर्य है!

इससे (काया से) ममता छोड़कर, प्रभु से अनुरूपता करो, उससे मेल करो, उसका चिंतवन करो। भूधरदास कहते हैं कि शीघ्र ही ऐसा ख्याल (विचार-चिंतन) करो, क्योंकि तनिक सा भी भरोसा करना भूल हो सकती है। अर्थात् शरीर पर भरोसा मत करो।

जोजरी - जर्जरित, टूटी-फूटी। बसाय - बसावट, निवास।

(७४)

राग भैरवी

गाफिल हुवा कहाँ तू डोले, दिन जाते तेरे भरती में॥

चोकस करत रहत है नाहीं, ज्यो अंजुलि जल झरती में।
तैसे तेरी आयु घटत है, बचै न बिरिया मरती में॥ १॥

कंठ दबै तब नाहिं बनेगो, काज बनाले सरती में।
फिर पछताये कुछ नहिं होवै, कूप खुदै नहीं जरती में॥ २॥

मानुष भव तेरा श्रावक कुल, यह कठिन मिला इस धरती में।
'भूधर' भवदधि चढ़ नर उतरो, समकित नवका तरती में॥ ३॥

हे मानव! तू बेसुध होकर कहाँ भटक रहा है? तेरी आयु के दिन बीतते जाते हैं, चुकते जाते हैं।

जैसे अंगुलि में भरा जल यत्न करने पर भी छिद्रों में से झरता जाता है, ठहरता नहीं है वैसे तेरी आयु भी घटती जाती है और चुक जाती है तो मरण समय आ जाता है, ऐसा विचारकर तू सावधान क्यों नहीं होता!

जब मृत्यु समीप आयेगी तब तू कुछ भी नहीं कर सकेगा। इसलिए समय रहते चेत, अपना कार्य सिद्ध कर। जब आग लग जाय, उस समय कुआँ खोदने से प्रयोजन नहीं सधता। उस समय पछताने से कुछ नहीं बनता।

भूधरदास कहते हैं कि इस पृथ्वी पर, इस कर्मभूमि में तुझे यह दुर्लभ मनुष्यभव और उत्तम श्रावक कुल की प्राप्ति हुई है, अतः सम्यक्त्वरूपी नौका में बैठकर इस संसार-सागर से पार उतरने का यह ही सुअवसर है।

नवका = नौका।

(७५)

चाल गोपीचन्द

यह तन जंगम रूखड़ा, सुनियो भवि प्रानी।
एक बूंद इस बीच है, कछु बात न छानी॥ टेक॥

गरभ खेतमें मास नौ, निजरूप दुराया।
बाल अंकुरा बढ़ गया, तब नजरों आया॥ १॥

अस्थिरसा भीतर भया, जानै सब कोई।
चाम त्वचा ऊपर चढ़ी, देखो सब लोई॥ २॥

अधो अंग जिस पेड़ है, लख लेहु सयाना।
भुज शाखा दल आँगुरी, दृग फूल रवाँना॥ ३॥

वनिता वेलि सुहावनी, आलिंगन कीया।
पुत्रादिक पंछी तहां, उड़ि वासा लिया॥ ४॥

निरख विरख बहु सोहना, सबके मनमाना।
स्वजन लोग छाया तकी, निज स्वारथ जाना॥ ५॥

काम भोग फलसों फला, मन देखि लुभाया।
चाखतके मीठे लगे, पीछैं पछताया॥ ६॥

जरादि बलसों छवि घटी, किसही न सुहाया।
काल अगनि जब लहलही, तब खोज न पाया॥ ७॥

यह मानुष द्रुमकी दशा, हिरदै धरि लीजे।
ज्यों हूवा त्यों जाय है, कछु जतन करीजे॥ ८॥

धर्म सलिलसों सींचिकै, तप धूप दिखइये।
सुरग मोक्ष फल तब लगैं, 'भूधर' सुख पइये॥ ९॥

हे भव्यजनो! सुनो, यह देह एक अस्थायी वृक्ष है, इस देह में एक आत्मा निवास करती है, यह बात किसी से भी छिपी हुई नहीं है। माता के गर्भाशय में

नौ महीने रहा और अपने स्वरूप को छिपाया। बालक अंकुर जब बढ़ने लगा, तब लोगों की दृष्टि में आया। भीतर में सब कुछ अस्थिर-सा था, ये सब कोई जानते थे, जब ऊपर चमड़ी बनी तब फिर सबने देखी। ये अंग वृक्ष के समान हैं। हे सयाने! तू देख - हाथ दोनों शाखाएँ हैं, अंगुलियाँ पत्तों के समान हैं और आँखें पुष्प-सी रमणीय हैं। स्त्री बेल के समान सुहावनी लगती है, उसका आलिंगन किया जाता है और जिनने गर्भ में आकर जन्म लिया है वे पुत्रादिक पक्षीरूप हैं।

जब उस वृक्ष को देखा तो सुहावना लगा, सबके मन को अच्छा लगा। स्वजन अपने स्वार्थ के कारण उसकी छाया में आते हैं। काम-भोगरूपी फलों के बीच बढ़ते हुए, मन उसी में लुब्ध हो गया। उसके फल चखने में मीठे लगे, परन्तु पीछे पछताना पड़ा।

रोगादि से बल घटा, रूप बिगड़ा, फिर वह (देह/वृक्ष) किसी को भी अच्छा नहीं लगने लगा और तभी मृत्यु की आग दहक उठी और वह उसमें समा गया, उसका पता/चिह्न भी शेष न रहा।

इस मनुष्यरूपी वृक्ष की यह ही दशा है, इस बात को हृदय में धारण कर लीजिए, समझ लीजिए। जो हो चुका वह हो चुका, अब आगे के लिए कुछ यत्न कर लीजिए। धर्मरूपी जल से सींचकर संयम की, तप की धूप दिखाइए अर्थात् उनका पालन कीजिए। धूधरदास कहते हैं कि स्वर्ग और मोक्षरूपी फल मिलें तब ही सुख की प्राप्ति होगी।

रूंखड़ा = वृक्ष। छानी = छुपी हुई। रवाँना - रमणीय। विरख - वृक्ष। खोज - पता, चिह्न। जंगम = स्थायी न रहनेवाला।

(७६)

गजल

रखता नहीं तनकी खबर, अनहद बाजा बाजिया।
घट बीच मंडल बाजता, बाहिर सुना तो क्या हुआ॥

जोगी तो जंगम से बड़ा, बहु लाल कपड़े पहिरता।
उस रंगसे महरम नहीं, कपड़े रंगे तो क्या हुआ॥ १॥

काजी किताबैं खोलता, नसीहत बतावै और को।
अपना अमल कीन्हा नहीं, कामिल हुआ तो क्या हुआ॥ २॥

पोथी के पाना बांचता, घर-घर कथा कहता फिरै।
निज ब्रह्म को चीन्हा नहीं, ब्राह्मण हुआ तो क्या हुआ॥ ३॥

गांजारु भांग अफीम है, दारू शराबा पोशता।
प्याला न पीया प्रेमका, अमली हुआ तो क्या हुआ॥ ४॥

शतरंज चोपर गंजफा, बहु खेल खेलैं हैं सभी।
बाजी न खेली प्रेमकी, जुवारी हुआ तो क्या हुआ॥ ५॥

'भूधर' बनाई वीनती, श्रोता सुनो सब कान दे।
गुरुका वचन माना नहीं, श्रोता हुआ तो क्या हुआ॥ ६॥

अरे जीव! तुझे अपने तन की कुछ भी ख़बर नहीं है। तेरे अन्तर में अनाहत नाद हो रहा है, उसे तूने वहाँ नहीं सुना जहाँ बज रहा है, गूँज रहा है, और अगर तूने उसे बाहर सुना, तो उससे क्या परिणाम निकला? वह जोगी जो लाल वस्त्र धारणकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करता रहता है, वह स्वयं अगर उस रंग में नहीं रंगा, उस रंग का रहस्य न समझा/न जाना तो उसके कपड़े रंगने मात्र से क्या होगा? कुछ भी नहीं होगा।

काजी (धर्मगुरु) किताबें खोल-खोलकर अन्यजनों को तो उपदेश देता है पर खुद उसने उन पर आचरण नहीं किया, तो वह योग्य हुआ तो भी क्या लाभ?

पुस्तक के पन्ने पढ़कर, घर-घर जाकर कथावाचन करे, अगर उसको पढ़कर अपने ब्रह्म को, अपनी आत्मा को नहीं पहचान पाया तो ब्राह्मण हो कर भी क्या हुआ?

सारे नशे - गांजा, अफीम, भाँग, शराब, पोश्त आदि का सेवन कर मस्त हुआ, पर यदि हृदय से प्रेम-प्रीति का व्यवहार न कर सका, प्रेम-प्रीति में मस्त न हो सका तो नशेवान होकर भी क्या हुआ?

शतरंज, चौपड़, गंजफा, सारे खेल खेल लिए, मगर हृदय से आत्म-प्रेम की बाजी न खेली तो उसके खिलाड़ी/जुवारी होने से भी क्या हुआ ?

भूधरदास कहते हैं कि हे श्रोतागण! मैंने यह विनती बनाई है सो सुनो, यदि गुरु का वचन नहीं माना तो सुननेवाला होकर भी क्या हुआ?

(७७)

राग विहाग

जगत जन जूवा हारि चले ॥ टेक ॥
काम कुटिल संग बाजी मांडी, उन करि कपट छले ॥ जगत. ॥
चार कषायमयी जहं चौपरि, पासे जोग रले।
इस सरवस उत कामिनी कौड़ी, इह विधि झटक चले ॥ १ ॥ जगत. ॥
कूर खिलार विचार न कीन्हों, ह्वै है ख्वार भले।
बिना विवेक मनोरथ काके, 'भूधर' सफल फले ॥ २ ॥ जगत. ॥

जगत के लोग जूवा हारकर चले गये। काम (कामनाओं) व कुटिलता के साथ बाजी खेली, उनके द्वारा छले गये और बाजी हार गये।

चौपड़ की चार पट्टियाँ चार कषाय के समान हैं, पासे योग के समान हैं। एक ओर तो सर्वस्व है दूसरी ओर कामिनीरूपी कौड़ी है, उस कोड़ी से झटके गये अर्थात् छले गये।

ये झूठे खेल खेलते समय तो विचार नहीं करते, अपनी बरबादी कर लेते हैं और फिर दुःखी होते हैं। भूधरदास कहते हैं कि बिना विवेक किये गये कार्य से किसका मनोरथ सफल हुआ है? अर्थात् किसी का नहीं हुआ।

योग = मन-वचन और काय की प्रवृत्ति। यह प्रवृत्ति बदलती रहती है जैसे चौपड़ के पासे लुढ़कते हुए बदलते रहते हैं।

(७८)

राग बङ्गाला

जगमें श्रद्धानी जीव जीवनमुकत हैंगे॥ टेक॥

देव गुरु सांचे मानैं, सांचो धर्म हिये आनैं।
ग्रन्थ ते ही सांचे जानैं, जे जिन उकत हैंगे॥ १॥ जगमें.॥

जीवनकी दया पालैं, झूठ तजि चोरी टाले।
परनारी भालैं नैंन जिनके लुकत हैंगे॥ २॥ जगमें.॥

जीयमैं सन्तोष धारैं, हियैं समता विचारैं।
आगैंको न बंध पारैं, पाछैंसौं चुकत हैंगे॥ ३॥ जगमें.॥

बाहिज क्रिया आराधैं, अन्दर सरूप साधैं।
'भूधर' ते मुक्त लाधैं, कहूं न रुकत हैंगे॥ ४॥ जगमें.॥

इस जगत में जो सम्यकदृष्टि जीव हैं वे निश्चित रूप से जीवन से अर्थात् संसार से मुक्त होंगे; वे मोक्षगामी हैं, भव्य हैं।

जो सच्चे देव, सच्चे गुरु को माने, जो सच्चे धर्म को हृदय में धारण करे, उनको ही सत्य माने व जाने, वे ही उक्त प्रकार के 'जिन' (मोक्षगामी) होंगे।

जो जीवों के प्रति दयाभाव रखे व उसका पालन करे, असत्य-झूठ का त्याग करे, चोरी को टाले अर्थात् उससे दूर रहे, जिनके नैन पर-नारी पर कुदृष्टि नहीं रखते, जो ऐसा करने से बचते हैं वे ही मोक्षगामी होंगे।

जो जीवन में संतोष-वृत्ति को धारण करते हैं, हृदय में समताभाव रखते हैं, वे आस्रव को रोककर, संवर धारणकर नवीन कर्मों का बंध नहीं करेंगे तथा पिछले कर्मों की निर्जरा करेंगे वे ही मोक्षगामी होंगे।

जो बाहिर में निश्चल क्रिया का साधनकर, अंतरंग में अपने स्वरूप का साधन करते हैं, भूधरदास कहते हैं कि वे संसार-समुद्र को अवश्य लाँघेंगे, कहीं न रुकेंगे अर्थात् निश्चय से मुक्त होंगे।

लुकत = छिपना, बचना।

(७९)

वे कोई अजब तमासा, देख्या बीच जहान वे, जोर तमासा सुपनेका-सा॥

एकौंके घर मंगल गावैं, पूरी मनकी आसा।
एक वियोग भरे बहु रोवैं, भरि भरि नैन निरासा॥ १॥ वे कोई.॥

तेज तुरंगनिपैं चढ़ि चलते, पहिरैं मलमल खासा।
रंक भये नागे अति डोलैं, ना कोइ देय दिलासा॥ २॥ वे कोई.॥

तरकैं राजतखत पर बैठा, था खुशवक्त खुलासा।
ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जंगल कीना वासा॥ ३॥ वे कोई.॥

तन धन अथिर निहायत जगमें, पानीमाहिं पतासा।
'भूधर' इनका गरब करैं जे, धिक तिनका जनमासा॥ ४॥ वे कोई.॥

अरे, इस संसार में एक अजब तमाशा देखा, जो सपने की भाँति है। एक के घर मनोवांछा पूर्ण होती है, मंगल गीत गाए जाते हैं और दूसरे के घर वियोग होता है तो रुदन होता है, उनकी आँखों में निराशा दिखाई देती है।

एक (व्यक्ति) तेज घोड़े पर, अच्छी मखमली पौशाक पहिने चलता है, तो दूसरा निर्धन होकर नग्न घूमता है, उसको कोई किसी प्रकार की सांत्वना, सहारा या ढाढस नहीं देता।

एक व्यक्ति प्रातःकाल राजसिंहासन पर आसीन था, उस समय अत्यन्त खुश था, दोपहर होते ही वह घड़ी आ गई कि उसको सब वैभव छोड़कर जंगल में रहने को विवश होना पड़ा।

इस जगत में तन-धन आदि सब जल में बतासे की भाँति है, इन पर/इनके लिए जो कोई गर्व करता है, उसका जन्म धिक्कार है, तिरस्कृत है।

जनमासा = मनुष्य जन्म।

(८०)

राग कल्याण

सुनि सुजान! पांचों रिपु वश करि, सुहित करन असमर्थ अवश करि।
जैसै जड़ खखारको कीड़ा, सुहित सम्हाल सकैं नहिं फंस करि॥

पांचन को मुखिया मन चंचल, पहले ताहि पकर, रस कस करि।
समझ देखि नायक के जीतै, जै है भाजि सहज सब लसकरि॥ १॥

इंद्रियलीन जनम सब खोयो, बाकी चल्या जात है खस करि।
'भूधर' सीख मान सतगुरुकी, इनसों प्रीति तोरि अब वश करि॥ २॥

हे ज्ञानी सुनो! अपना हित करने के लिए पाँचों इन्द्रियरूपी शत्रुओं को शक्तिहीन-बलहीन कर अपने वश में करो।

जैसे खखार अर्थात् थूके गए कफ में फँसा हुआ कीड़ा अपने को असहाय पाता है, अपने हित को नहीं संभाल पाता वैसे ही इन इन्द्रिय-विषयों में फँसे होने के कारण जीव अपना हित करने में असमर्थ होता है, बेबस हो जाता है।

इन पाँचों इंद्रियों का मुखिया यह चंचल मन है। सबसे पहले उसे पकड़, वश में कर फिर रस अर्थात् स्वाद को/जीभ को कस (वश में कर)। अपने नायक को जीत लिया (हारा हुआ) जानकर इसकी सारी सेना सहज ही हार स्वीकार कर लेगी, कमजोर पड़ जायेगी, भाग जायेगी।

इन्द्रियों के वशीभूत होकर सारा जन्म वृथा ही खो दिया, और शेष जीवन भी इस ही भाँति सरकता जा रहा है, बीतता जा रहा है। भूधरदास कहते हैं तू सत्गुरु की सीख को मान और इन इन्द्रिय-विषयों से प्रीति तोड़कर इनको अपने वश में करले।

खसकरि = खिसकना, सरकना।

(८१)

राग सोरठ

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी। अलख अमूरति की जोरी॥ अहो.॥

इतमैं आतम राम रंगीले, उतमैं सुबुद्धि किसोरी।
या कै ज्ञान सखा संग सुन्दर, बाकै संग समता गोरी॥ १॥ अहो.॥

सुचि मन सलिल दया रस केसरि, उदै कलस मैं घोरी।
सुथी समझि सरल पिचकारी, सखिय प्यारी भरि भरि छोरी॥ २॥ अहो.॥

सत गुरु सीख तान धुरपद की, गावत होरा होरी।
पूरब बंध अबीर उड़ावत, दान गुलाल भर झोरी॥ ३॥ अहो.॥

'भूधर' आजि बड़े भागिन, सुमति सुहागिन मोरी।
सो ही नारि सुलछिनी जगमैं, जासौं पतिनै रति जोरी॥ ४॥ अहो.॥

अहो, देखो आत्मा व सुमति दोनों रंग भर-भरकर होली खेलते हैं। यह अलख-अदृश्य, न दिखाई देनेवाली की और अमूर्त की जोड़ी है। एक ओर तो ज्ञानरंगों से रंगीले आत्माराम हैं और दूसरी परिपक्वता की ओर अग्रसर सुबुद्धि सुमतिरूपी किशोरी है। एक के (आत्मा के) साथ मित्ररूप में ज्ञान है तो दूसरे के (सुमति के) साथ समता-रूपी सहेली। आत्मा देहरूपी कलश में, जल के समान शुद्ध मन में करुणारस की दया की केशर घोलकर विवेकसहित सरल भावों की पिचकारी भर-भरकर सखियों पर छोड़ रही है, अर्थात् करुणाभाव सर्वांग से मुखरित है। जैसे होली के अवसर पर गाई जानेवाली ध्रुपद में काफी थाट की धुन-बंदिश अत्यन्त मधुर होती है, वैसे ही सत्गुरु का सदुपदेश अत्यन्त मनमोहक व सुग्राहय होता है, जिसे हृदयंगम करने पर आत्मानुभूति से बँधी कर्म-शृंखला उदय में आकर निर्जरित होती है, अबीर की भाँति उड़ती जाती है। भूधरदास कहते हैं कि बड़े भाग्य से आज यह सुमति सुहागिन मेरी हुई है अर्थात् मुझे विवेक जागृत हुआ। आत्मारूपी वर के लिए सुमति (सम्यक्ज्ञान) ही एकमात्र योग्य सुलक्षणा वधू है, इसके साथ की गई प्रीति ही फलदायक है।

(८२)

राग सलहामारू

सुनि सुनि हे साथनि! म्हारे मनकी बात।
सुरति सखीसों सुमति राणी यों-कहै जी।
वीत्यो है साथनि म्हारी! दीरघकाल,
म्हारो सनेही म्हारे घर ना रहै जी॥

ना बरज्यो रहै साथनि म्हारी चेतनराव,
कारज अधम अचेतनके करै जी।
दुरमति है साथनि म्हारी जात कुजात,
सोई चिदातम पियको चित्त हरै जी॥ १॥

सिखयौ है साथनि म्हारी केती बार,
क्यों ही कियो हठी हठ एरी हरै जी।
कीजे हो साथनि म्हारी कौन उपाय,
अब यह विरह विथा नहिं सही परै जी॥ २॥

चलि चलि री साथनि म्हारी,
जिनजीके पास, वे उपगारी इसैं समझावसी जी।
जगसी हे सखी म्हारे मस्तक भाग,
जो म्हारौ कंथ समझि घर आवसी जी॥ ३॥

कारज हे सखी म्हारी! सिद्ध न होय,
जब. लग काल-लबधिबल नहिं भलो जी।
तो पण हे सखी म्हारी उद्यम जोग,
सीख सयानी 'भूधर' मन सांभलो जी॥ ४॥

सुमति रानी अपनी सखी सुरति (सुधी/भक्ति) से कहती है कि हे सखी! मेरे मन की बात सुनो। हे साथिन, बहुत काल व्यतीत हो गया है, मेरा स्नेही/प्रिय (आत्मा) मेरे घर पर नहीं रहता।

हे साथिन! वह चेतन मानता ही नहीं और अचेतन के साथ अधम कार्य करता है। दुर्मति (कुमति) मेरी एक नीची जाति की साथिन है, उसने मेरे प्रियतम आत्मा का चित्त लुभा रखा है। मेरी साथिन को कई बार समझाया है परन्तु उस हठी ने अपनी हठ के आगे उस सीख को अनदेखा किया है (हर लिया है)। हे मेरी सखी! कोई उपाय कर, प्रियतम से विरह की व्यथा अब सही नहीं जाती।

इस पर वह सुरति सखी सुमति से कहती है - हे साथिन! श्रीजिन की शरण में चल, वे उपकार करनेवाले हैं। सुमति कहती है - वह मेरा प्रियतम चेत जाय, समझ जाय और घर वापस आ जाय तो मेरा भाग्य जग जाय।

हे सखी! जब तक काल-लब्धि न आवे, तब तक मेरा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। फिर भी भूधरदास उचित सीख देते हुए कहते हैं कि मन को समझाने के लिए इस हेतु उद्यम - प्रयत्न तो करना ही चाहिए।

(८३)

राग धमाल सारंग

होरी खेलौंगी, घर आये चिदानंद कन्त॥ टेक॥
शिशिर मिथ्यात गयो आई अब, कालकी लब्धि बसन्त॥ होरी.॥

पिय सँग खेलनको हम तरसीं कालन अनन्त।
भाग फिरे अब फाग रचानों, आयो बिरहको अन्त॥ १॥ होरी.॥

सरधा गागरमें रुचिरूपी, केसर घोरि तुरन्त।
आनँद नीर उमग पिचकारी, छोड़ो नीकी भन्त॥ २॥ होरी.॥

आज वियोग कुमति सौतनिकै, मेरे हरष महन्त।
'भूधर' धनि यह दिन दुर्लभ अति, सुमति सखी विहसन्त॥ ३॥ होरी.॥

हे सखी! आज चेतनरूपी स्वामी मेरे घर आये हैं अर्थात् आज इस जीवात्मा को अपने चेतनस्वरूप की पहचान हुई है, इसलिए मैं आज उनसे होली खेलूँगी। मिथ्यात्वरूपी शीत ऋतु का अन्त हो गया है और अब काल-लब्धिरूपी बसन्त ऋतु का प्रादुर्भाव हुआ है।

सुमति कहती है कि अपने स्वामी आत्मा के साथ खेलने के लिए हम अनन्तकाल तक तरसती रही हैं। अब भाग्योदय हुआ है, विरह का अन्त हुआ है इसलिए मिलन के अवसर पर होली का उत्सव मनाना है। श्रद्धारूपी मटकी में रुचिरूपी केसर तुरन्त घोलकर उमगते हुए आनंदरूपी जल से भरी पिचकारी जी भरकर स्वामी पर छोड़ूँगी। आज स्वामी का कुमति से वियोग हुआ है अर्थात् कुमति का (दुर्बुद्धि, मिथ्याबुद्धि) का नाश हुआ है। यह मेरे लिए अत्यन्त हर्ष की बात है। भूधरदास कहते हैं कि आज का दिन धन्य है क्योंकि यह दुर्लभ अवसर बहुत कठिनता से प्राप्त हुआ है इसलिए सुमति सखी आज अत्यन्त प्रमुदित है, प्रसन्न है।

(८४)

राग धमाल सारंग

हूं तो कहा करूं कित जाऊँ, सखी अब कासौं पीर कहूं री! ॥ टेक ॥

सुमति सती सखियनिके आगैं, पियके दुख परकासै।
चिदानन्दवल्लभ की वनिता, विरह वचन मुख भासै ॥ १ ॥ हूं तो. ॥

कंत बिना कितने दिन बीते, कौंलौं धीर धरौं री।
पर घर हौंडै निज घर छांडै, कैसी विपति भरौं री ॥ २ ॥ हूं तो. ॥

कहत कहावतमें सब यों ही, वे नायक हम नारी।
पै सुपनैं न कभी मुँह बोले, हमसी कौन दुखारी ॥ ३ ॥ हूं तो. ॥

जइयो नाश कुमति कुलटाको, बिरमायो पति प्यारो।
हमसौं विरचि रच्यो रँग वाके, असमझ (?) नाहिं हमारो ॥ ४ ॥ हूं तो. ॥

सुंदर सुघर कुलीन नारि मैं, क्यौं प्रभु मोहि न लोरैं।
सत हू देखि दया न धरैं चित, चेरीसों हित जोरैं ॥ ५ ॥ हूं तो. ॥

अपने गुनकी आप बड़ाई, कहत न शोभा लहिये।
ऐरी! वीर चतुर चेतनकी, चतुराई लखि कहिये ॥ ६ ॥ हूं तो. ॥

करिहौं आजि अरज जिनजीसों, प्रीतमको समझावैं।
भरता भीख दई गुन मानौं, जो बालम घर आवैं ॥ ७ ॥ हूं तो. ॥

सुमति वधू यौं दीन, दुहागनि, दिन-दिन झुरत निरासा।
'भूधर' पीउ प्रसन्न भये विन, बसै न तिय घरवासा ॥ ८ ॥ हूं तो. ॥

(कुमति के वशीभूत होकर यह आत्मा सुमति से विमुख हो रहा है - यह सुमति की विडंबना की कहानी है, यह कहानी उस ही के मुँह से कहलायी गई है।)

हे सखी! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किसको जाकर अपना दुखड़ा कहूँ? चिदानन्द आत्मा की वधू सुमति अपने प्रिय की विमुखता के कारण दु:खी होकर, विरह की पीड़ा अपनी सखियों के आगे अपने मुख से इस प्रकार व्यक्त कर रही है -

प्रियतम के बिना कितने दिन बीत गए, कब तक धीरज रखें! अपने घर को छोड़कर वे पर-घर में भटक रहे हैं, यह कथा कैसी विपत्ति से भरी हुई है!

कहने को तो सब यह ही कहते हैं कि वे प्रियतम हैं और हम हैं उनकी नारी परन्तु वे स्वप्न में भी हमसे नहीं बोलते, तो बताओ हम से अधिक दु:खी कौन है?

उस कुमतिरूपी कुलटा का नाश हो, जिसने हमारे प्रियतम को भटका रखा है। हमसे दूर रहकर उसके रंग-ढंग ही विचित्र हैं, परन्तु वे नासमझ नहीं हैं।

हम कुलीन, सुगठित सुशील व सुन्दर हैं, फिर भी प्रियतम हमसे प्रेम क्यों नहीं करते! कुलीन/सद्गुणसम्पन्न हमें देखकर भी उनके चित्त में जरा भी करुणाभाव जाग्रत नहीं होता। उस दासी कुमति से ही वे अपने को जोड़े रहते हैं।

अपने गुणों की अपने द्वारा ही प्रशंसा किया जाना (स्वयं ही प्रशंसा करना) शोभा नहीं देता। ऐ सखी! वीर, चतुर, इस आत्मा की चतुराई को जरा देखो। मैं आज ही जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि वे हमारे प्रियतम को समझावें। यदि वे घर आ गए तो मानो याचक को उसकी मनचाही भीख मिल गई।

इस प्रकार प्रियतम से अलग दीन सुमति वधू दिन-रात अपनी निराशा में ही झूल रही है। भूधरदास कहते हैं कि प्रियतम की प्रसन्नता के बिना स्त्री का घर बस नहीं पाता।

हाँडे = भटके। लौंरैं = प्रेम करें।

(८५)

बारह भावना

अनित्य - राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥ १॥

अशरण - दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरिया जीव को, कोऊ न राखन हार॥ २॥

संसार - दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥ ३॥

एकत्व - आप अकेलो अवतरे, मरै अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥ ४॥

अन्यत्व - जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥ ५॥

अशुचि - दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥ ६॥

आस्रव - मोह नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥ ७॥

संवर - सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमैं।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं॥ ८॥

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर॥ ९॥

निर्जरा - पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥ १०॥

लोक - चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान॥ ११॥

बोधि - धन-कन-कंचन-राजसुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥ १२॥

धर्म - जाँचे सुर तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥ १३॥

---

१. अनित्य (अध्रुव) - चाहे छत्रधारी राजा हो या कोई हाथी का सवार, सबको अपने समय पर अवश्य मरना है अर्थात् निश्चय ही मृत्यु सबकी होगी।

२. अशरण - किसी के साथ अनुयायियों का समूह हो, चाहे सैन्यबल साथ हो, किसी को देवी-देवता का संरक्षण हो, चाहे किसी के माता-पिता व परिवारजन साथ हों, वे भी मरण के समय सहायी नहीं होते, वे भी मरण के समय आने पर जीव को रोक नहीं पाते/रख नहीं पाते।

३. संसार - जीव धनविहीन होने पर निर्धनता के कारण दु:खी होता है और धनवान होने पर तृष्णा के कारण दु:खी होता है। इस प्रकार सारे संसार को ढूँढ़ा पर इसमें सुख कहीं नहीं मिला।

४. एकत्व - जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। इसमें जीव का कभी कोई साथी-सगा या अपना नहीं होता।

५. अन्यत्व - जिस देह को हम अपने जन्म के साथ लाये थे वह देह भी अपनी नहीं है, साथ देनेवाली नहीं है तब अन्य कौन अपना हो सकता है? घर, सम्पत्ति और परिवार-सम्बन्धी - ये तो प्रत्यक्ष ही अपने से भिन्न हैं, पर हैं, ये अपने सगे कैसे हो सकते हैं?

६. अशुचि - हाड़ों (हड्डियों) के पिंजरेवाली देह ऊपर से चमड़ी की चादर से ढकी हुई है पर यह भीतर से जितनी घिनावनी (घृणास्पद) है उतनी घृणास्पद वस्तु इस जगत में अन्य कोई नहीं है।

७. आस्रव - मोहरूपी निद्रा के जोर से जगत के सब जन बेसुध हो रहे हैं, और संसार में भ्रमण कर रहे हैं; कर्मरूपी चोर सब ओर व्याप्त हैं, वे जीव

का सर्वस्व लूट लेते हैं पर उसको सुधी नहीं रहती, भान नहीं रहता।

८. **संवर** - ऐसे में सत्गुरु जगाते हैं - पर जब मोह की निद्रा कम हो, कर्मों का उपशम हो, तब ही उसका कोई उपाय करने पर कर्मरूपी चोरों को आने से रोका जा सकता है।

९. ज्ञानरूपी दीपक लेकर उसे तप-साधनारूपी तेल से पूरित कर (तेल भरकर) अपने अन्तःकरणरूपी घर का शोधन करे तब अनादिकाल से बैठे हुए कर्म चोर बाहर निकलते हैं। कर्मरूपी चोरों को बारह निकालने की यही एक विधि है।

१०. **निर्जरा** - पंच महाव्रत (सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य) का पालन, पाँच समिति (ईर्या, भाषा, एषणा, प्रतिष्ठापना, आदान-निक्षेपण) का आचरण और पाँच इन्द्रियों पर विजय से निर्जरा (कर्मों का क्षय) होता है, ऐसी दृढ़ धारणा करो।

११. **लोक** - आकाश में चौदह राजू ऊँचा पुरुषाकार (पुरुष के आकार) लोक स्थित है। जीव ज्ञानरहित-सा होकर अनादिकाल से वहाँ (लोक में) भ्रमण करता चला आ रहा है।

१२. **बोधि** - इस संसार में धन, धान्य, स्वर्ण, राजसुख सब सुलभ हो सकते हैं, परन्तु यथार्थ ज्ञान जो मुक्ति का साधक है वह मिलना/होना अत्यन्त कठिन है, दुर्लभ है।

१३. **धर्म** - कल्पवृक्ष भी याचना करने पर सुख-सामग्री दे देता है, फिर भी दिन-रात उस सहज-सुलभ सुख-सामग्री की चिन्ता घेरे रहती है। अर्थात् कल्पवृक्ष से सुख-सामग्री प्राप्त करने के लिए कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ता केवल याचना करनी होती है, तब भी उसकी चिन्ता लगी रहती है पर 'धर्म' से बिना याचना व बिना चिन्ता किये ही सकल सुख मिल जाते हैं अर्थात् 'धर्म' बिना याचना व बिना चिन्ता के सकल सुख दे देता है।

बिरिया = समय, अवसर। जाँचे-याचें = याचना करने पर।

परिशिष्ट

		भजन	क्र.सं.	पृष्ठ सं.
अ	१.	अजित जिनेश्वर अघहरणं	७	८
	२.	अजित जिन बिनती हमारी मान जी	८	९
	३.	अज्ञानी पाप धतूरा न बोय	५८	८१
	४.	अन्तर उज्जल करना रे भाई	५४	७७
	५.	अब नित नेमि नाम भजो	११	१२
	६.	अब पूरी कर नींदड़ी	४७	६०
	७.	अब मन मेरे वे	६४	८७
	८.	अब मेरे समकित सावन आयो	५५	७८
	९.	अरे मन चल रे श्री हथनापुर को जात	२९	३८
	१०.	अरे! हौं चेतो रे भाई	२२	२६
	११.	अहो जगतगुरु एक	४२	५३
	१२.	अहो दोऊ रंग भरे खेलत होली	८१	१११
	१३.	अहो वनवासी पिया	१६	१७
आ	१४.	आज गिरिराज के शिखर	२	२
	१५.	आदिपुरुष मेरी आस भरोजी	६	७
	१६.	आयो रे बुढ़ापो मानी	७१	९८
	१७.	आरती आदि जिनन्द तुम्हारी	५	६
ए	१८.	एजी मोहे तारिये शांति जिनन्द	९	१०
ऐ	१९.	ऐसी समझ के सिर धूल	६०	८३
	२०.	ऐसो श्रावक कुल पाय	६८	९३
औ	२१.	और सब थोथी बातें	५६	७९
क	२२.	करुणा ल्यो जिनराज हमारी	४१	५१
	२३.	काया गागरि जोजरी	७३	१०१
ग	२४.	गरब नहिं कीजे रे	६२	८५
	२५.	गाफ़िल हुआ कहाँ तू डोले	७४	१०२
च	२६.	चरखा चलता नहिं रे	७२	९९
	२७.	चित चेतन की यह बिरिया रे	६१	८४
ज	२८.	जै जगपूज परमगुरु नामी	४३	५५
	२९.	जग में जीवन थोरा	१८	२०

		भजन	क्र.सं.	पृष्ठ सं.
	३०.	जगत जन जूआ हारि चले	७७	१०७
	३१.	जग में श्रद्धानी जीव जीवनमुक्त हैंगे	७८	१०८
	३२.	जपि माला जिनवर नाम की	२३	२७
	३३.	जिनराज चरण मन मति बिसरे	३२	४१
	३४.	जिनराज ना बिसारो	३३	४२
	३५.	जीवदया व्रत तरु बड़ो	६९	९५
त	३६.	तहाँ ले चल री जहाँ जादौपति प्यारा	१५	१६
	३७.	तुम तरन तारन भव निवारण	२५	३१
	३८.	तुम सुनियो साधो	५३	७५
	३९.	ते गुरु मेरे मन बसो	५१	७१
	४०.	त्रिभुवन गुरु स्वामीजी	२०	२२
थ	४१.	थाँकी कथनी म्हाने प्यारी लगे जी	२८	३७
द	४२.	देखे देखे जगत के देव	४०	५०
	४३.	देखो गरब गहेली री हेली	१७	११
	४४.	देखो भाई आतमदेव विराजे	५२	७४
	४५.	देख्यो री कहिं नेमिकुमार	१४	१५
न	४६.	नेमि बिना न रहे मेरो जियरा	१३	१४
	४७.	नैननि को बान परी	३५	४५
प	४८.	पानी में मीन पियासी	५९	८२
	४९.	पारस पद नख प्रकाश	२१	२५
	५०.	पारस प्रभु को नाऊँ	२४	२८
	५१.	पुलकन्त नयन	३४	४३
	५२.	प्रभु गुण गाय रे	३७	४७
ब	५३.	बन्दौं दिगम्बर गुरु चरण	५०	६८
भ	५४.	भगवन्त भजन क्यों भूला रे	१०	११
	५५.	भल्यो चेत्यो वीर नर तू	४९	६७
	५६.	भवि देखी छवि भगवान की	३१	४०
म	५७.	मन मूरखपंथी, उस मारग मत जाय रे	६७	९२
	५८.	मन हंस हमारी शिक्षा ले हितकारी	६५	९०
	५९.	मा विलंब न लाव	१२	१३
	६०.	मेरी जीभ आठों याम	४	५

		भजन	क्र.सं.	पृष्ठ सं.
	६१.	मेरे चारों शरण सहाई	३०	३९
	६२.	मेरे मन सूवा जिनपद पिंजरे वसि	१९	२१
	६३.	म्हें तो थांकी आज महिमा जानी	३६	४६
य	६४.	यह तन जंगल झाड़ा	७५	१०३
र	६५.	रखता नहिं तन की खबर	७६	१०५
	६६.	रटि रसना मेरी ऋषभ जिनन्द	३	४
	६७.	राजा राणा छत्रपति	८५	११७
ल	६८.	लगी लौ नाभि नन्दन सौं	१	१
व	६९.	वा पुर के वारणै जाऊँ	२७	३५
	७०.	वीरा थारी बान बुरी परी रे	६३	८६
	७१.	वे कोई अजब तमासा देख्या	७९	१०९
	७२.	वे मुनिवर कब मिली हैं	४५	५८
श	७३.	शेष सुरेश नरेश रटै तोहि	३८	४८
	७४.	श्री गुरु शिक्षा देत हैं	४८	६२
स	७५.	सब विधि करन उतावला	७०	९७
	७६.	सीमंधर स्वामी, मैं चरनन का चेरा	२६	३४
	७७.	सुन ज्ञानी प्राणी	४४	५७
	७८.	सुनि ठगिनी माया	५७	८०
	७९.	सुनि सुजान, पाँचों रिपु वश करि	८०	११०
	८०.	सुनि सुनि हे साधनी	८२	११२
	८१.	सो गुरुदेव हमारा हैं	४६	५९
	८२.	सो मत सांचो है मन मेरे	६६	९१
	८३.	स्वामीजी सांची सरन तुम्हारी	३९	४९
ह	८४.	हूँ तो कहा करूँ कित जाऊँ	८४	११५
	८५.	होरी खेलौंगी, घर आये चिदानन्द कंत	८३	११४